इसलिये इनमेंसे किसी एक श्लोककी व्याख्या और गुण-दोष हम और सुनना चाहते हैं।

कुछ गर्वके साथ हँसते हुए दिग्विजयीने कहा—केशवकी कमनीय कवितामें दोष तो दृष्टिगोचर हो ही नहीं सकते। हाँ, व्याख्या कहो तो कर दूँ। बताओ किस श्लोककी व्याख्या चाहते हो, यह बात दिग्विजयीने निमाई पण्डितको युक्तिसे चुप करनेके ही लिये कह दी थी। वे समझते थे मेरे सभी श्लोक नवीन हैं, मैं जल्दी-जल्दीमें उन्हें बोलता गया हूँ, ये उनमेंसे किसीको बता ही न सकेंगे इसलिये यह बात यहीं समाप्त हो जायगी। किन्तु निमाई भी कोई साधारण पण्डित नहीं थे। दिग्विजयी यदि भगवतीके वरसे कविवर हैं, तो ये भी श्रुतिधर हैं। झटसे आपने अपने कोमल कण्ठसे यह श्लोक पढ़ा—

महत्त्वं गङ्गायाः सततमिदमाभाति नितरां
यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्तिसुभगा।
द्वितीयश्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा
भवानीभर्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुतगुणा॥*

(केशवकाश्मीरी पण्डितस्य)

इस श्लोकको बोलकर आपने कहा—'इसकी व्याख्या और गुण-दोष कहिये।'

निमाईके मुखसे अपने श्लोकको यथावत् सुनकर दिग्विजयीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, उनका मुख फीका पड़ गया। सभी एकटक

---

* इस श्लोकका भाव यह है, कि इस गङ्गा देवीका महत्त्व सर्वदा देदीप्यमान है, इसी कारण यह बड़ी ही सौभाग्यशालिनी हैं। इनकी उत्पत्ति श्रीविष्णु भगवान्‌के चरणकमलसे हुई है। इनके चरणोंकी द्वितीय लक्ष्मीकी भाँति सुरनरगण सदा पूजा-अर्चा करते रहते हैं। ये अद्भुत गुणवाली देवी, भवानीके स्वामी श्रीमहादेवजीके सिरपरसे प्रवाहित हुई हैं।

होकर निमाईकी ओर देखने लगे, मानो दिग्विजयीकी श्री, प्रतिभा, कान्ति और प्रभा निमाईके पास आ गयी हो। कुछ बनावटी उपेक्षा-सी करते हुए कहा—'आप बड़े चतुर हैं, मैं इतनी जल्दी-जल्दी श्लोक बोलता था, उनके बीचमेंसे आपने श्लोकको कण्ठस्थ भी कर लिया।'

निमाईने धीरेसे नम्रतापूर्वक कहा—'सब आपकी कृपा है, कृपया इस श्लोककी व्याख्या और गुण-दोष सुनाइये।'

दिग्विजयीने कहा—'यह अलङ्कारका विषय है, तुम वैयाकरण हो, इसे क्या समझोगे?'

इन्होंने नम्रताके साथ कहा—'महाराज! हमने अलङ्कार-शास्त्रका यथावत् अध्ययन नहीं किया है, तो उसे सुना तो अवश्य है, कुछ तो समझेंगे ही। फिर यहाँ अलङ्कार-शास्त्रके ज्ञाता बहुत-से छात्र तथा पण्डित भी बैठे हुए हैं, उन्हें ही आनन्द आवेगा।'

अब दिग्विजयी अधिक टालमटोल न कर सके, वे अनिच्छापूर्वक बेमनसे श्लोककी व्याख्या करने लगे। व्याख्याके अनन्तर उपमालङ्कार और अनुप्रासादि गुण बताकर दिग्विजयी चुप हो गये। तब निमाई पण्डितने बड़ी नम्रताके साथ कहा—'आज्ञा हो और आप अनुचित न समझें तो मैं भी इस श्लोकके गुण-दोष बता दूँ?

मानो क्रुद्ध सर्पपर किसीने पाद-प्रहार कर दिया हो, संसारविजयी सरस्वतीके वरप्राप्त दिग्विजयी पण्डितके श्लोकमें यह युवक अध्यापक दोष निकालनेका साहस करता है, उन्होंने भीतरके दोषसे बनावटी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'अच्छा बताओ, श्लोकमें क्या गुण-दोष हैं?'

निमाई पण्डित अब श्लोककी व्याख्या करने लगे। उन्होंने कहा—'श्लोक बड़ा ही सुन्दर है, वैसे लगानेसे तो सैकड़ों गुण-दोष निकल सकते हैं, किन्तु मुख्यरूपसे इसमें पाँच गुण हैं और पाँच दोष हैं।'

दिग्विजयीने मुँहसे लाकर सिर हिलाते हुए कहा—'बताओ न कौन-कौन-से दोष हैं!'

निमाईने उसी सरलताके साथ कहा—पहिले श्लोकके गुण ही सुनिये।

(१) पहिला गुण तो इसमें 'शब्दालङ्कार' है। श्लोकके पहिले चरणमें पाँच 'तकारों' की पंक्ति बड़ी ही सुन्दरताके साथ ग्रथित की गयी है। तृतीय चरणमें पाँच 'रकार' और चतुर्थ चरणमें चार 'भकार' बड़े ही भले मालूम पड़ते हैं। इन शब्दोंके कारण श्लोकमें शब्दालङ्कार-गुण आ गया है।

(२) दूसरा गुण है 'पुनरुक्तिवदाभास'। पुनरुक्तिवदाभास उस गुणको कहते हैं जो सुननेमें तो पुनरुक्ति प्रतीत हो, किन्तु पुनरुक्ति न होकर दोनों पदोंके दो भिन्न-भिन्न अर्थ हों। जैसे श्लोकमें 'श्री-लक्ष्मी-इव' यह पद आया है। सुननेमें तो श्री और लक्ष्मी दोनों समान अर्थवाचक ही प्रतीत होते हैं किन्तु यहाँ श्री और लक्ष्मीका अलग-अलग अर्थ न करके 'श्रीसे युक्त लक्ष्मी' ऐसा अर्थ करनेसे सुन्दर अर्थ भी हो जाता है और साथ ही 'पुनरुक्तिवदाभास' गुण भी प्रकट होता है।

(३) तीसरा गुण है 'अर्थालङ्कार'। अर्थालङ्कार उसे कहते हैं, जिसमें अर्थके सहित उपमाका प्रकाश किया हो। जैसे श्लोकमें 'लक्ष्मीः इव' अर्थात् लक्ष्मीकी तरह कहकर गङ्गाजीको लक्ष्मीकी उपमा दी गयी है। इस कारण बड़ा ही मनोहर 'अर्थालङ्कार' है।

(४) चौथा एक और भी 'अर्थालङ्कार' गुण है, उसका नाम है 'विरोधाभासार्थालङ्कार'। विरोधाभासरूपी अर्थालङ्कार उसे कहते हैं कि उपमा-उपमेय एक-दूसरेसे बिलकुल विभिन्न गुणवाले हों, जैसे—

अम्बुजमम्बुनि जातं क्वचिदपि न जातमम्बुतारण्यु।
मुरभिदि तद्विपरीतं पादाम्भोजान्महाश्चर्यी जाता॥

अर्थात् जलसे तो कमलोंकी उत्पत्ति होती हुई देखी गयी है, किन्तु कमलसे जल कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, परन्तु भगवान्‌की लीला विचित्र ही है, उनके पाद-पद्मोंसे जगत्पावनी महानदी उत्पन्न हुई है। यहाँ कमलसे जलकी उत्पत्तिका विरोध है, किन्तु भगवान् तो 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' सभी प्रकारसे समर्थ हैं, इसलिये आपके श्लोकमें 'विष्णोश्चरणकमलोत्पत्तिसुभगा' इस पदसे विष्णु भगवान्‌के चरण-कमलोंसे उत्पत्ति बतानेसे 'विरोधाभासरूपी अर्थालङ्कार' आ गया है।

(५) पाँचवाँ एक और भी 'अनुमान' अलङ्कार है। श्लोकमें साध्य वस्तु गङ्गाजीका महत्त्व वर्णन करना है। विष्णुपादोत्पत्ति उसका साधन बताकर बड़ा चमत्कारपूर्ण अनुमानालङ्कार सिद्ध हो जाता है। अर्थात् 'विष्णुपादोत्पत्ति-वाक्य ही अनुमानालङ्कार है।'

इस प्रकार पाँच गुणोंको बताकर निमाई पण्डित चुप हो गये। सभी अनिमेषभावसे टकटकी लगाये निमाई पण्डितकी ही ओर देख रहे थे, उन्होंने ये सब बातें बड़ी सरलता और निर्भीकताके साथ कही थीं, दिग्विजयीका कलेजा भीतर-ही-भीतर खिंच-सा रहा था, वे उदासीनभावसे गङ्गाजीकी सीढ़ीके घाटकी ओर देख रहे थे, मानो वे कह रहे हैं, यह पत्थर यहाँसे हट जाय तो मैं इसमें समा जाऊँ। निमाई पण्डितके गुण बतानेपर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। जैसे किसी शास्त्री पण्डितसे कह दें आप थोड़ा-सा व्याकरण भी जानते हैं, जैसे उसे इस वाक्यसे कोई विशेष प्रसन्नता न होकर और दुःख ही होगा, उसी प्रकार अपने काव्यको सर्वगुणसम्पन्न समझनेवाले दिग्विजयीको इन पाँच गुणोंके श्रवणसे प्रसन्नताकी जगह दुःख ही हुआ। उन्होंने कुछ चिढ़कर कहा—'अच्छा, ये तो गुण हो गये, अब तुम बता सकते हो तो इसमेंके दोषोंको भी बताओ।'

यह सुनकर उसी गम्भीर वाणीसे निमाई पण्डित कहने लगे—

'गुणोंकी भाँति दोष भी इसमें अनेकों निकाले जा सकते हैं, किन्तु पाँच मोटे-मोटे दोष तो प्रत्यक्ष ही हैं। श्लोकमें दो स्थानोंपर तो 'अविमृष्ट-विधेयांश' दो दोष है, तीसरा 'विरुद्धमति' दोष है, चौथा 'भग्नक्रम' और पाँचवाँ 'पुनरुक्ति' दोष भी है। इस प्रकार ये पाँच दोष मुख्य हैं, अब इनकी व्याख्या सुनिये।

(१) 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष उसे कहते हैं जिसमें 'अनुवाद' अर्थात् परिज्ञात विषय आगे न लिखा जाय। ऐसा करनेसे अर्थमें दोष आ जाता है। आपके श्लोकका मूल विधेय है 'गङ्गाजीका महत्त्व' और 'इदम्' शब्द अनुवाद है। आपने 'अनुवाद' को पहिले न कहकर सबसे पहिले 'महत्त्वं गङ्गायाः' जो 'विधेय' है उसे ही आगे कह दिया, इससे 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष आ गया।

(२) दूसरा 'अविमृष्ट-विधेयांश' दोष 'द्वितीयश्रीलक्ष्मी' इस पदमें है। यहाँपर 'द्वितीयत्व' ही 'विधेय' है, द्वितीय-शब्द ही समासमें पड़ गया। समासमें पड़ जानेसे वह मुख्य न रहकर गौण पड़ गया। इससे शब्दार्थ-क्षय हो गया अर्थात् लक्ष्मीकी समता प्रकाश करना ही अर्थका मुख्य तात्पर्य था, सो द्वितीय शब्दके समासमें पड़ जानेसे अर्थ ही नाश हो गया।

(३) तीसरा श्लोकमें 'विरुद्धमति' दोष है। विरुद्धमति दोष उसे कहते हैं, कि कहना तो किसीके लिये चाहते हैं और अर्थ करनेपर किसी दूसरेपर घटता है। आपके श्लोकमें 'भवानीभर्तुः' पद आया है, आपका अभिप्राय शङ्करजीसे है, किन्तु अर्थ लगानेपर महादेवजीका न लगकर किसी दूसरेका ही भास होता है। 'भवानीभर्ता' के शब्दार्थ हुए (भवस्य पत्नी भवानी भवान्या भर्ता=भवानीभर्ता) अर्थात् शिवजीकी पत्नीका पति।

इससे पार्वतीजीके किसी दूसरे पतिका अनुमान किया जा सकता है। जैसे 'ब्राह्मणपत्नीके स्वामीको दान दो' इस वाक्यके सुनते ही दूसरे पतिका बोध होता है। काव्यमें इसे 'विरुद्धमति' दोष कहते हैं, यह बड़ा दोष समझा जाता है।

(४) चौथा 'पुनरुक्ति' दोष है। पुनरुक्ति दोष उसे कहते हैं, एक बातको बार-बार कहना—या क्रियाके समाप्त होनेपर फिरसे उसी बातको दुहराना। आपके श्लोकमें 'विभवति' क्रिया देकर विषयको समाप्त कर दिया है, फिर भी क्रियाके अन्तमें 'अद्भुतगुणा' विशेषण देकर 'पुनरुक्तिदोष' कर दिया गया है।

(५) पाँचवाँ 'भग्नक्रम' दोष है। भग्नक्रम दोष उसे कहते हैं कि दो या तीन पदोंमें तो कोई क्रम जारी रहे और एक पदमें वह क्रम भग्न हो जाय। आपके श्लोकके प्रथम चरणमें पाँच 'तकार' तीसरेमें पाँच 'रकार' और चतुर्थ चरणमें चार भकारोंका अनुप्रास है किन्तु दूसरा चरण अनुप्रासोंसे रहित ही है। इससे श्लोकमें 'भग्नक्रम' दोष आ गया।

महामहिम निमाई पण्डित बृहस्पतिके समान निर्भीक होकर धाराप्रवाह गतिसे बोलते जाते थे, सभी दर्शकोंके चेहरेसे प्रसन्नताकी किरणें निकल रही थीं। दिग्विजयी लज्जाके कारण सिर नीचा किये हुए चुपचाप बैठे थे। निमाई पण्डितका एक-एक शब्द उनके हृदयमें शूलकी भाँति चुभता था, उससे वे मन-ही-मन व्यथित होते जाते थे, किन्तु बाहरसे ऐसी चेष्टा करते थे, जिससे भीतरकी व्यथा प्रकट न हो सके, किन्तु चेहरा तो अन्तःकरणका दर्पण है, उसपर तो अन्तःकरणके भावोंका प्रतिबिम्ब पड़ता ही है। निमाई पण्डितके चुप हो जानेपर भी दिग्विजयी नीचा सिर किये

हुए चुपचाप ही बैठे रहे, उन्होंने अपने मुखसे एक भी शब्द इनके प्रतिवादमें नहीं कहा। यह देखकर विद्यार्थी ताली पीटकर हँसने लगे। गुणग्राही निमाई पण्डितने डाँटकर उन्हें ऐसा करनेसे निषेध किया। दिग्विजयीको लज्जित और खिन्न देखकर आप नम्रताके साथ कहने लगे—'हमने बाल-चापल्यके कारण ये बातें कह दी हैं। आप इनको कुछ बुरा न मानें। हम तो आपके शिष्य तथा पुत्रके समान हैं। अब बहुत रात्रि व्यतीत हो गयी है, आपको भी नित्यकर्मके लिये देर हो रही होगी। हमें भी अपने-अपने घर जाना है। अब आप पधारें। कल फिर दर्शन होंगे। आपके काव्यको सुनकर हम सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। रही गुण-दोषकी बात, सो सृष्टिकी कोई भी वस्तु दोषसे खाली नहीं है। गुण-दोषोंके सम्मिश्रणसे ही तो इस सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। कालिदास, भवभूति, जयदेव आदि महाकवियोंके काव्योंमें भी बहुत-से दोष देखे जाते हैं। यह तो कुछ बात नहीं है, दोष ही न हों, तो फिर गुणोंके महत्त्वको कौन समझे? अच्छा तो आज्ञा दीजिये' यह कहकर सबसे पहिले निमाई पण्डित ही उठ बैठे। इनके उठते ही सभी छात्र भी एक साथ ही उठ खड़े हुए। सर्वस्व गँवाये हुए व्यापारीकी भाँति निराशाके भावसे दिग्विजयी भी उठ खड़े हुए और धीरे-धीरे उदास-मनसे अपने डेरेकी ओर चले गये। इधर निमाई पण्डित नित्यकी भाँति हँसते-खेलते और चौकड़ी लगाते शिष्योंके साथ अपने स्थानको चले गये।

दिग्विजयीका वैराग्य

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥*

(भर्तृहरि वै० श० ३५)

जिसकी जिह्वाने मिश्रीका रसास्वादन नहीं किया है, वही लौटा अथवा सीरामें सुखका अनुभव करेगा। जिस स्थानमें गुड़से चीनी या शक्कर बनायी जाती है, उसके बाहर एक बड़ा-सा कुण्ड होता है, उसमे गुड़का सम्पूर्ण काला-काला मैल छन-छनकर आता है। दूकानदार उस मैलको कारखानेमेंसे सस्ते दामोंमें खरीद लाते हैं और उसे तंबाकूमें कूटकर बेचते हैं। दूकानदार सीरेको काठके बड़े-बड़े पीपोंमें भरकर और गाड़ीमें लादकर ले जाते हैं। काठके पीपेमें छोटे-छोटे छिद्र हो जाते हैं, उनमेंसे सीरा रास्तेमें टपकता जाता है, हमने अपनी आँखोंसे देखा है, कि

* भोगमें रोगका भय है, कुल बढ़नेसे उसके च्युत होनेका भय है, अधिक धन होनेमे उससे राजभय है, मौन होनेमें दीनताका भय है, बलमें शत्रुका भय है, रूपमें वृद्धावस्थाका भय है, शास्त्राभ्यासमें वादविवादमें हार जानेका भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमे उसके नष्ट हो जानेका भय है, संसारके यावत् पदार्थ सभी भयसे भरे पड़े हैं। बस, एक वैराग्य ही भयसे रहित है। वैराग्यमें किसीका भी भय नहीं।

गाँवके ग्वारिया उन बूँदोंको उँगलियोंसे उठाकर चाटते हैं और मिठासकी खुशीके कारण नाचने लगते हैं; जहाँ कहीं बड़ी-बड़ी दस-पाँच बूँदें मिल जाती हैं, वहाँ वे प्रसन्नताके कारण उछलने लगते हैं और खुशीमें अपनेको परम सुखी समझने लगते हैं। यदि उन्हें कहीं मिश्री खानेके लिये मिल जाय, तो फिर वे उस बदबूदार सीरेकी ओर आँख उठाकर भी न देखेंगे, क्योंकि असली मिठास तो मिश्रीमें ही है। सीरेमें तो उसका मैल है। मिठासके संसर्ग-के कारण ही मैलमें भी मिठास-सा प्रतीत होता है। अज्ञानी बालक उसे ही मिठास समझकर खुशीसे कूदने लगते हैं।

इसी प्रकार असली आनन्द तो वैराग्यमें ही है, विषयोंमें जो आनन्द प्रतीत होता है, वह तो वैराग्यका मैलमात्र ही है, जिसने वैराग्यका रसास्वादन कर लिया, वह इन क्षणभंगुर अनित्य संसारी विषयोंमें क्यों राग करेगा! वैराग्यका पिता पश्चात्ताप है, पश्चात्तापके बिना वैराग्य हो ही नहीं सकता। जब किसी महात्माके संसर्गसे हृदयमें अपने पुराने कृत्योंपर पश्चात्ताप होगा तभी वैराग्यकी उत्पत्ति होगी। वैराग्यका पुत्र त्याग है, त्याग वैराग्यसे ही उत्पन्न होता है, बिना वैराग्यके त्याग ठहर ही नहीं सकता। त्यागके सुख नामका पुत्र है और शान्ति नामकी एक पुत्री। 'त्यागान्नास्ति परं सुखम्' त्यागसे बढ़कर परम सुख कोई है ही नहीं। त्यागके बिना सुख हो ही नहीं सकता। भगवान् भी कहते हैं—'त्यागाच्छान्ति-रनन्तरम्' त्यागके अनन्तर ही शान्तिकी उत्पत्ति होती है। अतः इस पूरे परिवारके आदिपुरुष या पूर्वज जनक पश्चात्ताप ही हैं। पश्चात्तापके बिना इस परिवारकी वंशवृद्धि नहीं हो सकती। इसीलिये तो सत्संगकी इतनी महिमा वर्णन की गयी है। महापुरुषोंके संसर्गमें जानेसे कुछ तो अपने व्यर्थके कर्मोंपर पश्चात्ताप होगा ही, इसीलिये भगवती श्रुति बार-बार कहती है 'कृतं स्मर' 'कृतं स्मर' किये हुएका स्मरण करो। असली पश्चात्ताप तो सर्वस्वके नष्ट हो जानेपर या अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तुके न प्राप्त होनेपर ही

होता है। जिन्हें परम सुखकी इच्छा है और संसारी पदार्थोंमें उसका अभाव पाते हैं, वे संसारी सुखोंमें लात मारकर असली सुखकी खोजमें पहाड़ोंकी कन्दराओंमें तथा एकान्त स्थानोंमें रहकर उसकी खोज करने लगते हैं उन्हींको विरागी कहते हैं।

दिग्विजयी पण्डित केशव काश्मीरीकी हार्दिक इच्छा थी कि मैं संसारमें सर्वोत्तम ख्याति लाभ करूँ, भारतवर्षमें मैं ही सर्वश्रेष्ठ कवि और पण्डित समझा जाऊँ। इसीके लिये उन्होंने देश-विदेशोंमें घूमकर इतनी इज्जत-प्रतिष्ठा और धूम-धामकी सामग्री एकत्रित की थी, आज एक छोटी उम्रके युवक अध्यापकने उनकी सम्पूर्ण प्रतिष्ठा धूलमें मिला दी। उनकी इतनी ऊँची आशापर एकदम पानी फिर गया। उनकी इतनी जबरदस्त ख्याति अग्निमें जलकर खाक हो गयी, इससे उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। गङ्गाजीसे लौटकर वे चुपचाप आकर पलँगपर पड़ रहे। साथियोंने भोजनके लिये बहुत आग्रह किया किन्तु तबीअत खराब होनेका बहाना बताकर उन्होंने उन लोगोंसे अपना पीछा छुड़ाया। वे बार-बार सोचते थे—'आज मुझे हो क्या गया! बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् मेरे सामने बोल नहीं सकते थे, अच्छे-अच्छे शास्त्री और आचार्य मेरे प्रश्नोंका उत्तर देना तो अलग रहा, यथावत् प्रश्नको समझ भी नहीं सकते थे, पर आज गङ्गा-किनारे उस युवक अध्यापकके सामने मेरी एक भी न चली। मेरी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये, उसकी एक बातका भी मुझसे उत्तर देते नहीं बना। मेरी समझमें नहीं आता यह बात क्या है?' उन्हें बार-बार सरस्वतीदेवीके ऊपर क्रोध आने लगा। वे सोचने लगे—'मैंने कितने परिश्रमसे सरस्वती-मन्त्रका जाप किया था, सरस्वतीने भी प्रत्यक्ष प्रकट होकर मुझे वरदान दिया था, कि मैं शास्त्रार्थमें सदा तुम्हारी जिह्वापर निवास किया करूँगी, आज उसने अपना वचन झूठा कैसे कर दिया, आज वह मेरी जिह्वापरसे कहाँ चली गयी?'

इसी उधेड़-बुनमें वे उसी देवीके मन्त्रका जप करने लगे और जप करते करते ही सो गये।

स्वप्नमें मानो सरस्वतीदेवी उनके समीप आयी हैं और कह रही हैं—'सदा एक-सी दशा किसीकी नहीं रही है। जो सदा सबको विजय ही करता रहा है, उसे एक दिन पराजित भी होना पड़ेगा। तुम्हारा यह पराभव तुम्हारे कल्याणके ही निमित्त हुआ है। इसे तुम्हें इस दिग्विजयका और मेरे दर्शनोंका फल ही समझना चाहिये। यदि आज तुम्हारी पराजय न होती तो तुम्हारा अभिमान और भी अधिक बढ़ता। अभिमान ही नाशका मुख्य हेतु है। तुम निमाई पण्डितको साधारण पण्डित ही न समझो। वे साक्षात् नारायणस्वरूप हैं, वे नररूपधारी श्रीहरि ही हैं, उन्हींकी शरणमें जाओ, तभी तुम्हारा कल्याण होगा और तुम इस मोहरूपी अज्ञानसे मुक्त हो सकोगे।' इतनेमें ही दिग्विजयीकी आँखें खुल गयीं। देखते क्या हैं भगवान् भुवनभास्कर प्राचीदिशिमें उदित होकर अपनी जगन्मोहिनी हँसीके द्वारा सम्पूर्ण संसारको आलोक प्रदान कर रहे हैं। पण्डित केशव काश्मीरीको प्रतीत हुआ मानो मरीचिमाली भगवान् मेरे पराभवके ही ऊपर हँस रहे हैं। वे जल्दीसे कुर्त्ता पहिनकर नंगे सिर और नंगे पैरों अकेले ही निमाईके घरकी ओर चले। रास्तेमें जो भी इन्हें इस वेशमें जाते देखता, वही आश्चर्य करने लगता। राजा-महाराजाओंकी भाँति जो हाथीपर सवार होकर निकलते थे, जिनके हाथीके आगे-आगे चोबदार नगाड़े बजा-बजाकर आवाज देते जाते थे, वे ही दिग्विजयी पण्डित आज नंगे पैरों साधारण आदमियोंकी भाँति नगरकी ओर कहाँ जा रहे हैं? इस प्रकार सभी उन्हें कुतूहलकी दृष्टिसे देखने लगे। कोई-कोई तो उनके पीछे भी हो लिये। नगरमें जाकर उन्होंने बच्चोंसे निमाई पण्डितके घरका पता पूछा। झुंड-के-झुंड लड़के उनके

साथ हो लिये और उन्होंने निमाई पण्डितका घर बता दिया।

उस समय गौर गङ्गा-स्नान करके तुलसीमें जल दे रहे थे। सहसा दिग्विजयी पण्डितको सादे वेशमें अकेले ही अपने घरकी ओर आते देख उन्होंने दौड़कर उनका स्वागत किया। दिग्विजयी आते ही प्रभुके चरणोंमें गिर गये। प्रभुने जल्दीसे उन्हें उठाकर छातीसे लगाते हुए कहा—'हैं हैं, महाराज! यह आप कर क्या रहे हैं? मैं तो आपके पुत्रके समान हूँ। आप जगत्-पूज्य हैं, आप ऐसा करके मुझपर पाप क्यों चढ़ा रहे हैं? आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, आप ही मेरे पूजनीय और परम माननीय हैं।'

गद्गद-कण्ठसे दिग्विजयीने कहा—'प्रभो! मान-प्रतिष्ठाकी भयंकर अग्निमें दग्ध हुए इस पापीको और अधिक सन्ताप न पहुँचाइये। इस प्रतिष्ठारूपी सूकरी-विष्ठाको खाते-खाते पतित हुए इस नारकीयको और अधिक पतित न बनाइये। अब मेरा उद्धार कीजिये।'

प्रभु उनका हाथ पकड़कर भीतर ले गये और बड़े सत्कारसे उन्हें बिठाकर कहने लगे—'आपने यह क्या किया, पैदल ही यहाँतक कष्ट किया, मुझे आज्ञा भेज देते, तो मैं स्वयं ही आपके डेरेपर उपस्थित होता। मालूम होता है आप मुझे सम्मान प्रदान करने और मेरी टूटी-फूटी कुटियाको पवित्र करनेके ही निमित्त यहाँ पधारे हैं। इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। आज यह घर पवित्र हुआ। मेरी विद्या सफल हुई जो आप-ऐसे महापुरुषोंके चरण यहाँ पधारे।'

दिग्विजयी पण्डित नीचे सिर किये चुपचाप प्रभुकी बातें सुन रहे थे। वे कुछ भी नहीं बोलते थे। इसलिये प्रभुने धीरे-धीरे फिर कहना प्रारम्भ किया—'कल मुझे पीछेसे बड़ी लज्जा आयी। मैंने व्यर्थमें ही कुछ कहकर आपके सामने धृष्टता की। आप कुछ और न समझें। आपने सुना ही होगा, मेरा स्वभाव बड़ा ही चञ्चल है। जब मैं कुछ कहने लगता हूँ, तो आगे-पीछेकी सब बातें भूल जाता हूँ। बस, फिर बकने ही लगता हूँ!

छोटे-बड़ेका ध्यान ही नहीं रहता। इसी कारण कल कुछ अनुचित बातें मेरे मुखसे निकल गयी हों तो उनके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।'

दिग्विजयीने अधीर होकर कहा—'प्रभो! अब मुझे अधिक वञ्चित न कीजिये। मुझे सरस्वतीदेवीने रात्रिमें सब बातें बता दी हैं, अब मेरे उद्धारका उपाय बताइये।'

प्रभुने कहा—आप कैसी बातें कह रहे हैं? आप शास्त्रोंके मर्मको भलीभाँति जानते हैं, फिर भी मुझे सम्मान देनेकी दृष्टिसे आप पूछते ही हैं, तो मैं निवेदन करता हूँ। असलमें मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य तो उसीको समझना चाहिये जिसके द्वारा प्रभुके पादपद्मोंमें प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न हो। यह जो आप हाथी-घोड़ोंको साथ लिये घूम रहे हैं, यह भी ठीक ही है, किन्तु इनसे संसारी भोगोंकी ही प्राप्ति हो सकती है। भगवत्-प्राप्तिमें ये बातें कारण नहीं बन सकतीं। आप तो सब जानते ही हैं—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
विदुषामिह वैदुष्यं भुक्तये न तु मुक्तये॥

(श्रीशंकराचार्य)

अर्थात् सुन्दर सुललित सौष्ठवयुक्त धाराप्रवाह वाणी और बढ़िया व्याख्यान देनेकी युक्ति ये सब मनुष्यको संसारी भोगोंकी ही प्राप्ति करा सकती हैं। इनके द्वारा मुक्ति अर्थात् प्रभुके पाद-पद्मोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

संसारी प्रतिष्ठाका महत्त्व ही क्या है? जो चीज आज है और कल नहीं है, उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है। महाराज भर्तृहरिने इस बातको भलीभाँति समझा था। वे स्वयं राजा थे, सब प्रकारके मान-सम्मान और संसारी भोग-पदार्थ उन्हें प्राप्त थे। उनकी राजसभामें बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् दूर-दूरसे नित्यप्रति आया ही करते थे। इसलिये उन्हें इन

सब बातोंका खूब अनुभव था, वे सब जानते थे, कि इतने भारी-भारी विद्वान् इज्जत-प्रतिष्ठा और अनित्य तथा दुःखका मुख्य हेतु बतानेवाले धनके लिये किस प्रकार कुत्तेकी तरह पूँछ हिलाते रहते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे उन्हें परम वैराग्य हुआ। और उन्होंने अपने परम अनुभवकी बात इस एक ही श्लोकमें बता दी है—

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः॥

(श्रीभर्तृहरि वै० श० ८१)

इन श्रुति, स्मृति, पुराण और बड़े विस्तारके साथ शास्त्रोंके ही पठन-पाठनमें जिन्दगीको लगाये रहनेसे क्या होता है। बस, इनसे स्वर्गरूपी ग्राममें एक कुटी बनाकर भोगोंको भोगनेका ही अवसर मिल जाता है। इस कर्मकाण्डके क्रिया-कलापोंमें कालयापन करनेसे क्या लाभ! जो इस दुःखरचनासे युक्त संसार-बन्धनको विध्वंस करनेमें प्रलयाग्निके समान तेजोमय हैं ऐसे प्रभुके पाद-पद्मोंको नैरन्तर्य भावसे सेवन करते रहनेके अतिरिक्त ये सभी कार्य वैश्योंके-से व्यापार हैं। एक चीजको देकर उसके बदलेमें दूसरी चीज लेना है। असली वस्तु तो प्रभुकी प्राप्ति ही है। उसीके लिये उद्योग करना चाहिये।

दिग्विजयीने कहा—'अब आप हमें हमारा कर्तव्य बता दीजिये। ऐसी हालतमें हमें क्या करना चाहिये। अब इस वणिक्-व्यापारसे तो एकदम घृणा हो गयी है।'

प्रभुने हँसते हुए कहा—आप शास्त्रज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं। शास्त्रमें सभी विषय भरे पड़े हैं, आपसे कोई विषय छिपा थोड़े ही है, किन्तु हाँ, इसे मैं आपका परम सौभाग्य ही समझता हूँ, कि इतनी बड़ी भारी प्रतिष्ठासे आपको एकदम वैराग्य हो गया है, लोग पुत्रैषणा और वित्तैषणाको तो छोड़ भी सकते हैं, किन्तु लोकैषणा इतनी प्रबल होती है कि बड़े-बड़े महापुरुष भी इसे छोड़नेमें पूर्ण रीतिसे समर्थ नहीं होते। श्रीहरिभगवान्‌की आपके ऊपर यह परम असीम कृपा ही समझनी चाहिये कि आपको इसकी ओरसे भी वैराग्य हो गया। मैं तो परमसुखस्वरूप प्रभुकी प्राप्तिमें इसे ही मुख्य समझता हूँ। मैंने तो इस श्लोकको ही कर्तव्यताका मूलमन्त्र समझ रखा है—

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्
सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु त्यक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥

(श्रीमद्भा० माहात्म्य ४। ८०)

धर्मका आचरण करो और विषयवासनारूपी जो लोकधर्म हैं उन्हें छोड़ दो। सत्पुरुषोंका निरन्तर संग करो और हृदयसे भोगोंकी इच्छाको निकालकर बाहर फेंक दो। दूसरोंके गुण-दोषोंका चिन्तन करना एकदम त्याग कर दो। श्रीहरिकी सेवा-कथारूपी जो रसायन है उसका निरन्तर पान करते रहो। बस, इसीको मैंने तो मनुष्यमात्रका कर्तव्य समझा है। इसके अतिरिक्त आपने जो समझा हो, उसे कृपा करके मुझे बताइये।

श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका यह श्लोक केशव पण्डितने अनेक बार

पढ़ा होगा, और उसका प्रयोग भी हजारों बार अपने व्याख्यानोंमें किया होगा, किन्तु वे इसका असली अर्थ तो आज ही समझे। उनके कानोंमें यह पद—

अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु त्यक्त्वा
सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥

—बार-बार गूँजने लगा।

प्रभुकी आज्ञा लेकर और उनके उपदेशको ग्रहण करके दिग्विजयी पण्डित अपने डेरेपर आये। उनके पास जितने हाथी, घोड़े तथा अन्य साज-बाजके सामान थे, वे सभी उन्होंने उसी समय लोगोंको बाँट दिये और अपने सभी साथियोंको विदा करके वे भगवत्-चिन्तनके निमित्त कहीं चले गये। इनका फिर पीछे किसीको पता नहीं चला।

दिग्विजयीके परामवसे सभी लोग निमाई पण्डितकी बड़ी प्रशंसा करने लगे और सभी पण्डितोंने मिलकर उन्हें 'वादिसिंह' की उपाधि प्रदान करना चाहा। इस प्रकार निमाई पण्डितकी ख्याति और भी अधिक फैल गयी और उनकी पाठशालामें अब पहिलेसे बहुत अधिक छात्र पढ़नेके लिये आने लगे।

सर्वप्रिय निमाई

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥*

(गीता १२। १५)

न तो बाह्य सौन्दर्य ही सौन्दर्य है और न बाह्य पवित्रता ही असली पवित्रता है। जिसका हृदय शुद्ध है, उसमें तनिक भी विकार नहीं है तो वह बदसूरत होनेपर भी सुन्दर प्रतीत होता है, लोग उसके आन्तरिक सौन्दर्यके कारण उसपर मुग्ध हो जाते हैं और उसके इशारेपर नाचने लगते हैं। भीतरकी पवित्रता ही चेहरेपर झलकने लगती है। उस पवित्रतामें मोहकता है, इसीसे लोग उनके वशमें हो जाते हैं। यदि हृदय भी स्वच्छ शीशेकी भाँति निर्मल हो और देहकी कान्ति भी कमनीय और मनोहर हो तब तो उस देवतुल्य मनुष्यकी मोहकताका कहना ही क्या है।

---

* जिसे देखकर लोगोंके मनमें किसी प्रकारका भय या डर नहीं होता और जो दूसरोंसे भी किसी प्रकारकी शङ्का नहीं करता, उनके सामने निर्भीकताके साथ बर्ताव करता है। जिसके लिये प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों ही समान हैं, वह संसारी मनुष्य कभी हो ही नहीं सकता। वह तो भगवान्‌का अत्यन्त ही प्रिय नित्य शुद्ध मुक्तस्वरूप है।

फिर तो कहनेमें सुगन्ध ही है। ऐसा कौन सहृदय पुरुष होगा, जो ऐसे पुरुषके गुणोंका प्रशंसक नहीं बन जाता। यदि ऐसा पुरुष प्रसन्न-चित्त और चुलबुले स्वभावका भी हो, तब तो सभी लोग उससे आत्मीयकी भाँति स्नेह करने लगते हैं और उससे किसी भी मनुष्यको संकोच अथवा उद्वेग नहीं होता। बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक उससे खिलवाड़ करने लगते हैं।

निमाई पण्डितमें उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान थे। उनका हृदय अत्यन्त ही कोमल और बड़ा ही विशाल था, उसमें मनुष्यमात्रके ही लिये नहीं प्राणीमात्रके प्रति प्रेम और ममताके भाव भरे हुए थे, उनका शरीर सुगठित, सुन्दर और शोभायुक्त था। वे इतने अधिक सुन्दर थे, कि मनुष्य उनके सौन्दर्यको ही देखकर मोहित हो जाते थे। चेहरेपर कभी सिकुड़न ही नहीं पड़ती थी। हर समय हँसते ही रहते और साथियोंको भी अपनी विनोदपूर्ण बातोंसे सदा हँसाते रहते थे। स्वभावमें इतना चुलबुलापन था, कि छोटे-छोटे बच्चोंके स्वभावको भी मात कर देते थे। इन्हीं सब कारणोंसे नगरके सभी लोग इनसे आन्तरिक स्नेह रखते थे, जो भी इन्हें देख लेता वही प्रसन्नतासे खिल उठता। सभी जानते थे, निमाई अब बालक नहीं हैं, वे नवद्वीपके एक नामी पण्डित हैं, इन्होंने शास्त्रार्थ-में दिग्विजयी पण्डितको परास्त किया है, ये अपनी लोकोत्तर प्रतिभाके कारण बङ्गालके कोने-कोनेमें प्रसिद्ध हो गये हैं। सैकड़ों छात्र इनके पास विद्याध्ययन करने आते हैं, फिर भी वे इन्हें अपना एक साथी तथा प्रेमी ही समझते थे। उन लोगोंको यह खयाल कभी नहीं होता था, कि ये बड़े आदमी हैं, इनके साथ सम्मान और शिष्टाचारका व्यवहार करना चाहिये। वे यदि शिष्टाचार या सम्मान करना भी चाहें तो निमाई पण्डित उन्हें ऐसा करनेका अवकाश ही कब देनेवाले थे। ये उन सबसे बिना बात ही छेड़खानी करते। बड़े-बड़े लोगोंसे परिहास करनेमें नहीं चूकते थे। इनके सभी कार्य विचित्र होते और उनसे सभीको प्रसन्नता होती।

ये नवद्वीपके प्रत्येक मुहल्लेमें घूमते। कभी इस मुहल्लेसे उस मुहल्लेमें जा रहे हैं, और उस मुहल्लेसे इसमें। रास्तेमें जो भी मिल जाता है उसीसे कुछ-न-कुछ छेड़खानी करते हैं। बड़े लोग कहते हैं—'पण्डित! अब थोड़ी गम्भीरता भी सीखनी चाहिये, हर समय लड़कपन ठीक नहीं होता। अब तुम एक गण्यमान्य पण्डित हो गये हो।'

ये झूठा आश्चर्य-सा प्रकट करते हुए कहते 'हाँ, सचमुच अब हमारी गणना पण्डितोंमें होने लगी है, हमें तो पता भी नहीं। यदि ऐसी बात है तो हम कहीं जाकर किसीसे गम्भीरता जरूर सीखेंगे।' कहनेवाले बेचारे अपना-सा मुँह लेकर चले जाते। ये विद्यार्थियोंके साथ हँसते-खेलते फिर उसी भाँति चले जाते।

इनका नगर-भ्रमण बड़ा ही मनोहर होता। देखनेवाले इन्हें एकटक देखते-के-देखते ही रह जाते। तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर शरीर था, उसपर एक हलकी-सी बनियायिन रहती। चौड़ी काली किनारीकी नीचेतक लटकती हुई सफेद धोतीके ऊपर एक हल्के-से पीले रंगकी चादर ओढ़े रहते। मुखमें पानकी बीरी है, बाँये हाथमें पुस्तक है, दाहिनेमें एक हलकी-सी छड़ी है। साथमें दस-पाँच विद्यार्थी हैं, उनसे बातें करते हुए चले जा रहे हैं, बीच-बीचमें कभी इधर-उधर भी देखते जाते हैं। किसी कपड़ेवाले-की दूकानको देखकर उसपर जा बैठते हैं। कपड़ेवाला पूछता है—'कहिये महाराज! क्या चाहिये।' आप हँसते हुए कहते हैं—'जो यजमानकी इच्छा, जो दे दोगे वही ले लेंगे।' दूकानदार हँसी समझता और चुप हो जाता। कोई-कोई दूकानदार जबरदस्ती इनके सिर कपड़ा मँढ़ देता। आप उससे कहते—'लेनेको तो हम लिये जाते हैं, किन्तु पासमें पैसा नहीं है। उधार किसीसे न कभी चीज ली है न लेते हैं। दामोंकी आशा न रखना।' दूकानदार हाथ जोड़कर श्रद्धाके साथ कहते—'हमारा अहोभाग्य

आप पहिनेंगे, तो हमारा यह व्यवसाय भी सफल हो जायगा। यह कपड़ा और लेते जाइये। इसके किसी गरीब छात्रके वस्त्र बनवा दीजियेगा।' ये प्रसन्नतापूर्वक उन वस्त्रोंको ले आते। कोई-कोई दूकानदार इनसे कटाक्ष भी करता—'पैसा पास नहीं है, कपड़े खरीदने चले हैं।' आप हँसते हुए कहते—'पैसा ही पास होता तो फिर तुम्हारी ही दूकान कपड़ा खरीदनेको रही थी! फिर तो जी चाहता वहींसे खरीद लाते।'

कभी किसी गरीब वस्त्र बनानेवालेके यहाँ जाते। उसका थान देखते, उससे दाम पूछते और कहते 'दाम तो हमारे पास है नहीं, बोलो, वैसे ही दोगे'—वह श्रद्धाके साथ कहता, 'हाँ, ले जाइये महाराज! आपका ही तो है।' ये हँसते हुए चले आते।

इनके नाना नीलाम्बर चक्रवर्तीके पास बहुत-से अहीरोंके घर थे। वे दूध बेचनेका व्यवसाय करते। आप उनके घरोंमें चले जाते और जिस अहीरको भी पाते उसीसे कहते—'मामा! आज दूध नहीं पिलाओगे क्या?' वे इन्हें बड़े सत्कारसे अपने घरोंको ले जाते। सभी मिलकर विद्यार्थियोंके सहित इनका खूब सत्कार करते। कोई ताज़ा दूध पिलाता। कोई दही लाकर इनके सामने रख देता और थोड़ा खा लेनेका आग्रह करता। ये निस्संकोच भावसे खाने लगते। किसी स्त्रीको देखकर कहते 'मामी! तेरा दही तो खट्टा है, थोड़ी चीनी डाल देती तो स्वाद बन जाता।' यह सुनकर कोई चीनी लेने दौड़ती। चीनी घरमें न होती तो गुड़ ही ले आती। ये हँसते-हँसते गुड़के साथ दही पीने लगते। विद्यार्थियोंको भी दूध-दही पिलाते और फिर हँसते-हँसते पाठशालाकी ओर चले आते।

विशेषकर ये सीधे-सादे वैष्णवोंको और सरल स्वभाववाले दूकानदारों-को खूब छेड़ते। दूकानदारोंको भी इनके साथ छेड़खानी करनेमें आनन्द आता। एक पानवालेसे इनका सदा झगड़ा ही बना रहता। ये उससे

मुफ्त ही पान माँगा करते और वह मुफ्त देनेसे इनकार किया करता। तब ये अपने हाथसे ही उठा लेते। पानवाला हँस पड़ता, ये तबतक पानको चट कर जाते। पानवालेको ऐसा करनेमें नित्य नया ही आनन्द प्रतीत होता था, अतः यह झगड़ा प्रायः रोज ही हुआ करता। कभी तो दिनमें दो-दो, तीन-तीन बार हो जाता। पानवाला बड़ा ही सरल और कोमल प्रकृतिका पुरुष था। वह इन्हें पुत्रकी तरह मन-ही-मन चाहता था।

वहीं श्रीधर नामके एक भक्त दूकानदार थे। वे अत्यन्त ही गरीब थे, किन्तु थे परम वैष्णव। उनके पास रहनेवाले उनके कारण बहुत ही परेशान रहते। वे रातभर खूब जोरोंके साथ भगवन्नामका कीर्तन करते रहते। पड़ोसियोंकी रातमें जब भी आँखें खुलतीं तभी इन्हें भगवन्नामका कीर्तन करते ही पाते। कोई कहता—'भाई, इस बूढ़ेके कारण तो हम बड़े परेशान हैं, रातभर चिल्लाता रहता है, सोने ही नहीं देता?' कोई कहता—'भगवान् जाने इसे नींद क्यों नहीं आती। दिनभर तो दूकानदारी करता है और रातभर चिल्लाता रहता है, यह सोता किस समय है!'

कोई-कोई इनके पास जाकर कहते—'बाबा! भगवान् बहिरा थोड़े ही है, जरा धीरे-धीरे भजन किया करो।'

ये कहते—'बेटा! धीरे-धीरे कैसे करूँ, तुम सब लोग तो दिन-रात काममें ही जुटे रहते हो, कभी भगवान्का घड़ीभरको भी नाम नहीं लेते। इसलिये जिह्वासे नहीं ले सकते तो कानसे तो सुनोगे ही, इसीलिये मैं जोर-जोरसे भगवन्नामका उच्चारण करता हूँ जिससे तुम सबोंके कानोंमें भगवन्नाम पड़ जाय।'

इस प्रकार ये किसीकी भी बात नहीं सुनते और हमेशा भगवान्के मधुर नामोंका उच्चारण करते रहते। ये केलेके पत्ते और केलेके भीतरके कोमल-कोमल कोपलोंको बेचा करते। बंगालमें कोमल कोपलोंका साग

बनाया जाता है। निमाई इनसे रोज ही आकर छेड़खानी किया करते।

इनके खोलको उठा लेते और कहते—'पैसेके कितने खोल दोगे?' वे कहते—'चार देंगे।' तब आप कहते—'अजी, आठ दो। सब जगह आठ-आठ तो बिक ही रहे हैं।' श्रीधर कहते—'पण्डित! यह रोज-रोजकी छेड़खानी अच्छी नहीं होती। जहाँ आठ बिक रहे हों, वहींसे जाकर ले आओ। हमने तो चार ही बेचे हैं, चार ही देंगे। तुम्हारी राजी पड़े ले जाओ, न राजी हो मत ले जाओ, झगड़ा करनेसे क्या फायदा?'

आप कहते—'हमें तो तुम्हारे ही खोल बहुत प्रिय लगते हैं, तुम्हींसे लेंगे और आठ ही लेंगे।'

श्रीधर कहते—'देखो, तुम अब सयाने हुए। ये बातें अच्छी नहीं होतीं। तुम्हें आठ दे देंगे तो फिर सभी आठ ही माँगेंगे। यदि ऐसी ही बात है, तो हम तुम्हें बिना ही मूल्य खोल दिया करेंगे।'

निमाई हँसते हुए कहते—'वाह! फिर कहना ही क्या है?' 'नेकी और पूछ-पूछकर' 'मीठा और भर कठौता' बस, यही तो हमें चाहिये।'

फिर कहते—'हमारी पूजा नहीं करते, माला हमें भी दिया करो।'

श्रीधर कहते—'माला तो मैं देवताके ही लिये लाता हूँ, गङ्गाजीके लिये पुष्प लाता हूँ, तुम्हें पुष्प-माला कैसे दूँ?'

आप कहते—'सबसे बड़े देवता तो हमी हैं, हमसे बढ़कर देवता और कौन हो सकता है? गङ्गाजी तो हमारे चरणोंका धोवन हैं।'

यह सुनकर श्रीधर कानोंपर हाथ रख लेते और दाँतोंसे जीभ काटते हुए कहते—'हाय पण्डित! पढ़े-लिखे होकर ऐसी बातें कहते हो! ऐसी बातके कहनेसे पाप होता है। तुम ब्राह्मणके कुमार होकर ऐसी पापकी बातें अपने मुँहसे निकालते हो?'

कालान्तरमें यही श्रीधर महाप्रभु गौराङ्गके अनन्य भक्त हुए और इन्होंने अन्तमें उन्हें ईश्वर करके माना और अपने इन वाक्योंके लिये बहुत ही पश्चात्ताप प्रकट किया। प्रभु इनसे अत्यन्त ही स्नेह रखते थे। गौर-भक्तोंमें श्रीधरका खोल बहुत ही प्रसिद्ध था। गौरको श्रीधरके खोलके बिना सभी व्यञ्जन रुचिकर ही नहीं होते थे।

एक दिन ये घरकी ओर जा रहे थे, रास्तेमें पण्डित श्रीवासजी मिले। श्रीवास पण्डित अद्वैताचार्यके साथी और स्नेही थे। पण्डित जगन्नाथ मिश्रके ये अभिन्न मित्र थे, इनकी पत्नी मालतीदेवी और ये निमाईको सगे पुत्रकी भाँति प्यार करते थे। ये भी इन दोनोंमें माता-पिताके समान श्रद्धा रखते थे। श्रीवास पण्डितको देखकर इन्होंने उन्हें प्रणाम किया। पण्डितजीने इन्हें आशीर्वाद दिया और बड़े ही प्रेमके साथ बोले—'निमाई! देखो, अब तुम बालक नहीं हो, यह बाल-चापल्य तुम्हें शोभा नहीं देता। इस तरहसे उच्छृङ्खलताका जीवन बिताना ठीक नहीं। कुछ भक्तिभाव भी सीखना चाहिये। तुम्हारे पिता तो परम वैष्णव थे।'

इन्होंने सरलतासे कहा—'अभी थोड़े दिन और इसी तरह मौज कर लेने दो, फिर इकट्ठे ही वैष्णव बनेंगे और ऐसे वैष्णव बनेंगे, कि वैष्णवोंकी तो बात ही क्या है, साक्षात् विष्णु भी हमारे पास आया करेंगे।'

इनकी बात सुनकर उन्होंने कहा—'आगे और कब होगे? अभीसे कुछ भक्तिभाव करना चाहिये। किसी देवी-देवतामें श्रद्धा रखते हो?'

इन्होंने कहा—'किस देवतामें श्रद्धा रखें, आप ही कृपा करके बताइये?'

श्रीवास पण्डितने कहा—'जिसमें तुम्हारी श्रद्धा हो। देवपूजा करनी चाहिये और भगवन्नामका यथाशक्ति जप करना चाहिये।

निमाई जानते थे, कि वैष्णव 'सोऽहम्' और अहं 'ब्रह्मास्मि' इन वाक्योंसे चिढ़ते हैं। इसलिये श्रीवास पण्डितको चिढ़ानेके लिये कहने लगे—

'सोऽहम्' 'अहं ब्रह्मास्मि' हमारी तो इन्हीं महावाक्योंपर श्रद्धा है। जब हम ही ब्रह्म हैं तब पूजा किसकी करें और जप किसके नामका करें, आप ही बताइये!

यह सुनकर श्रीवास पण्डितने कानोंपर हाथ रख लिया और बोले—'वैष्णवके पुत्रको ऐसी बात मुखसे नहीं कहनी चाहिये। तुम तो लड़कपन किया करते हो।

इतना सुनकर ये यह कहते हुए घरकी ओर चले गये कि 'अच्छा, किसी दिन देख लेना, हम कैसे वैष्णव बनते हैं, तब तुम हमारे पीछे-ही-पीछे लगे डोलोगे।'

इन्होंने ये बातें हँसीमें कही थीं, किन्तु श्रीवास पण्डितको इन बातोंसे कुछ आशा-सी हुई। वे सोचने लगे—'यदि निमाई-जैसे पण्डित, मेधावी और सर्वप्रिय पुरुष वैष्णव बन जायँ तो वैष्णवधर्मका देशभरमें झंडा फहराने लगे। अनाथ वैष्णव भक्त सनाथ हो जायँ।' वे यही सोचते-विचारते गङ्गाजीकी ओर चले गये। कालान्तरमें श्रीवास पण्डितके विचार सत्य ही हो गये। वैष्णव-धर्मकी विजय-दुन्दुभिसे सम्पूर्ण देश गूँजने लग गया और भक्ति-भागीरथीकी एक ऐसी भारी बाढ़ आयी जिसके कारण सभी विषमता दूर होकर चारों ओर समताका साम्राज्य स्थापित हो गया।

श्रीविष्णुप्रिया-परिणय

रूपसम्पन्नमप्राप्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम्।
कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥*
(सु० र० भां० ३३६।५)

बहूके बिना घर सूना-ही-सूना लगता है, इसका अनुभव वही माता कर सकती है, जिसके घरमें एक ही पुत्र हो और उसकी सर्वगुणसम्पन्ना

---

* रूप और सद्गुणोंसे सम्पन्न, सभ्या अथवा सद्व्यवहारमें सुचतुर, अत्यन्त प्रेमयुक्त, सुन्दर वचन बोलनेवाली, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई तथा पतिके मनोऽनुकूल आचरण करनेवाली पत्नी बड़े भाग्यसे ही मिलती है।

पुत्र-वधू परलोकगामिनी हो चुकी हो, उसे चारों ओरसे अपना ही घर उजड़ा हुआ-सा दिखायी पड़ता है, घरकी लिपी-पुती स्वच्छ दीवालें उसे काटनेको दौड़ती हैं। एकलौते पुत्रको देखते ही माताकी छाती फटने लगती है और जब-जब पुत्रको स्वयं अपने हाथोंसे कुछ काम करते देखती है, तभी तब अश्रुओंसे अपनी छातीको भिगोती है। पुत्र-वधूसे रहित युवक पुत्रको देखकर माताको महान् कष्ट होता है। शचीमाताकी भी ऐसी ही दशा थी, जबसे लक्ष्मीदेवी परलोकगामिनी हुई हैं, तभीसे माताका चित्त उदास रहता है। वे निमाईको देखते ही रोने लगती हैं। निमाई मन-ही-मन सब समझते हैं, किन्तु कुछ कहते नहीं हैं, चुप ही रहते हैं, कहें भी तो क्या कहें?

माताको सदा यही चिन्ता रहती है, कि निमाईके योग्य कोई सुन्दरी और गुणवती कुलीन कन्या मिल जाय तो मैं जल्दी-से-जल्दी उसका दूसरा विवाह करके अपने घरको पहिलेकी भाँति हरा-भरा, आनन्द-उल्लासयुक्त देख सकूँ। वे गङ्गा-किनारे जब-जब जातीं तभी-तब वहाँ स्नान करनेके निमित्त आयी हुई अपनी सजातीय सयानी कन्याओंके ऊपर एक हलकी-सी दृष्टि डालतीं और फिर निगाह नीची कर लेतीं। इस प्रकार वे रोज ही अपनी नवीन पुत्र-वधूकी उन कन्याओंमें खोज किया करतीं।

उन्हीं कन्याओंके बीचमें वे एक परम सुन्दरी और सुशीला कन्याको भी देखतीं। वह कन्या प्रायः शचीदेवीको रोज ही मिलती। सुबह, शाम, दोपहरको जब भी शचीमाता स्नानके निमित्त आतीं तभी उस कन्याको घाटपर देखतीं, कभी तो वह स्नान करती होती, कभी देव-पूजन और कभी-कभी स्नान करके घरको जाती हुई शचीदेवीको मिलती। वह कन्या शचीमाताको जब भी देखती तभी वह बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रणाम करती। शचीदेवी भी प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद देतीं—'भगवान्‌की कृपासे

मेरी बेटीको योग्य पति प्राप्त हो।' कन्या इस आशीर्वादको सुनती और लज्जितभावसे नीची निगाह करके चली जाती।

एक दिन शचीमाताने उस कन्याको बुलाकर पूछा—'बेटी! तेरा क्या नाम है?'

लजाते हुए नीचेकी ओर दृष्टि करते हुए धीरेसे कन्याने कहा—'विष्णुप्रिया।'

माताने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'अहा, 'विष्णुप्रिया' कैसा सुन्दर नाम है! जैसा सुन्दर शील-स्वभाव है उसीके अनुरूप सुन्दर नाम भी है।' फिर पूछा—'बेटी! तेरे पिताका क्या नाम है?'

विष्णुप्रिया यह सुनकर चुपचाप ही खड़ी रहीं। उन्होंने इस प्रश्नका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब शचीमाताने पुचकारते हुए कहा—'बता दे बेटी! बतानेमे क्या हर्ज है, क्या नाम है तेरे पिताका?'

लजाते हुए और शरीरको कुछ टेढ़ा करते हुए धीरेसे विष्णुप्रियाने कहा—'राजपण्डित!'

माताने जल्दीसे कहा—'पं० सनातन मिश्रकी लड़की है तू! तब बताती क्यों नहीं है? राजपण्डितकी पुत्री भी राजपुत्री होती है, तभी नहीं बताती थी, क्यों यही बात है न?'

विष्णुप्रिया लजाती हुई चुपचाप खड़ी रही। माताने उससे और भी दो-चार बातें पूछकर उसे विदा किया। विष्णुप्रियाका शील स्वभाव और सौन्दर्य शचीमाताकी दृष्टिमें गड़-सा गया था। वे बार-बार यही सोचने लगीं—'क्या ही अच्छा हो यदि यह लड़की मेरी पुत्र-वधू बन जाय?' वे रोज घाटपर विष्णुप्रियाको देखतीं और उससे दो-चार बातें जरूर करतीं। विष्णुप्रियाका अद्भुत रूप-लावण्य, उनकी अत्यन्त कोमल

प्रकृति, प्रशंसनीय शील-स्वभाव और अनुपम विष्णुभक्तिकी वे मन-ही-मन बार-बार सराहना करतीं। इसलिये वे उनके प्रति अधिकाधिक प्रेम प्रदर्शित करने लगीं। विष्णुप्रियाके मनमें भी इनके प्रति भक्ति बढ़ने लगी।

शचीमाता बार-बार सोचतीं—'क्या हर्ज है, एक बार सनातन मिश्रसे पुछवाऊँ तो सही, बहुत करेंगे वे अस्वीकार ही कर देंगे।' फिर सोचतीं—'वे राजपण्डित हैं, धनाढ्य हैं, सब जगह उनकी भारी प्रतिष्ठा है, वे एक विधवाके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका सम्बन्ध क्यों करने लगे?' यही सोचकर कुछ डर-सी जातीं और उनका साहस नहीं होता।

एक दिन उन्होंने साहस करके काशीनाथ मिश्र नामके घटकको बुलाया और उनसे बोलीं—'मिश्रजी! तुमने सनातन मिश्रकी लड़की देखी है?'

घटकने कहा—'लड़की मैंने देखी है, बड़ी ही सुन्दर, सुशील तथा गुणवती है। निमाईके वह सर्वथा योग्य है। मैं समझता हूँ तुम उस लड़कीको अपनी पुत्र-वधू बनाकर जरूर प्रसन्न होगी।'

माताने कहा—'यह तो तुम ठीक कहते हो, किन्तु वे धनाढ्य हैं, राजपण्डित हैं। बहुत सम्भव है वे इस सम्बन्धको न स्वीकार करें। हमारी तो तुम दशा देखते ही हो, वैसे लड़कीको अन्न-वस्त्रका तो घाटा न होगा।'

घटकने जोर देकर कहा—'माताजी! तुम कैसी बात करती हो! भला, निमाई-जैसे योग्य प्रतिष्ठित पण्डितको जमाई बनानेमें कौन अपना सौभाग्य न समझेगा! मैं समझता हूँ, वे इसे सहर्ष स्वीकार कर लेंगे। मैं आज ही उनके यहाँ जाऊँगा और शामको ही तुम्हें उत्तर दे जाऊँगा।' यह कहकर काशीनाथ मिश्र माताको प्रणाम करके चले गये।

सनातन मिश्रके घरमें जब स्त्रियोंने यह बात सुनी तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। कोई कहने लगी—'लड़कीका भाग्य खुल गया।' कोई-कोई विष्णुप्रियाके ही सामने कहने लगी—'इतने दिनका इसका गङ्गा-स्नान और विष्णु-पूजा आज सफल हुई, साक्षात् विष्णुके ही समान इसे वर मिल गया।' ये सब बातें सुनकर विष्णुप्रिया लजाती हुई उठकर दूसरी ओर चली गयीं। स्त्रियाँ और भी भाँति-भाँतिकी बातें करने लगीं।

राजपण्डित सनातन मिश्रकी स्वीकृति लेकर घटक महाशय सीधे शचीमाताके समीप पहुँचे और उन्हें यह शुभ संवाद सुना दिया। सुनकर शचीमाताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसी समय विवाहकी तिथि आदि भी निश्चय करा दी।

सनातन मिश्रके यहाँ तिथि आदिकी सभी बातें पक्की करके काशीनाथ घटक आ ही रहे थे, कि रास्तेमें अकस्मात् उनकी निमाई पण्डितसे भेंट हो गयी। निमाईने उन्हें आलिङ्गन करते हुए कहा—'किधरसे आ रहे हैं? आप तो सदा घटाया ही करते हैं। कहिये किसे घटाकर आये हैं?'

हँसते हुए घटकने कहा—'घटाकर तो नहीं आये हैं बढ़ानेकी ही फिक्र है, तुम्हें एकसे दो करना चाहते हैं। बताओ, क्या सलाह है?'

कुछ आश्चर्य-सा प्रकट करते हुए निमाई पण्डितने कहा—'मैं आपकी बातका मतलब नहीं समझा। कैसा बढ़ाना, स्पष्ट बताइये?'

जरा आवाजको बढ़ाते हुए जोर देकर घटकने कहा—'राजपण्डित सनातन मिश्रकी पुत्रीके साथ तुम्हारे परिणयकी बातें पक्की करके आ रहा हूँ। बताओ तुम्हें मंजूर है न?'

इधर पण्डित सनातन मिश्र भी बहुत दिनोंसे चाह रहे थे, कि विष्णुप्रियाका सम्बन्ध निमाई पण्डितके साथ हो जाता तो बहुत अच्छा होता। किन्तु वे भी मनमें कुछ संकोच करते थे कि निमाई आजकल नामी पण्डित समझे जाते हैं। इस बीस बरसकी ही अल्प वयसमें उन्होंने इतनी भारी ख्याति प्राप्त कर ली है, बहुत सम्भव है वे इस सम्बन्धको स्वीकार न करें। यदि हमारी प्रार्थनापर भी उन्होंने इस सम्बन्धको स्वीकार न किया तो इसमें हमारा बहुत अपमान होगा। प्रायः धनी लोग अपने मानका बहुत ध्यान रखते हैं, इसी भयसे उन्होंने इच्छा रहनेपर भी आजतक यह बात किसीपर प्रकट नहीं की थी।

सनातन मिश्रके हृदयमें इसी प्रकारके विचार उठ ही रहे थे कि उसी बीच काशीनाथ घटक उनके समीप आ पहुँचे। घटकको देखकर उन्होंने इनका सम्मान किया, बैठनेको आसन दिया और आनेका कारण जानना चाहा। काशीनाथ घटकने आदिसे अन्ततक सब बातें कहकर अन्तमें कहा—'शचीमाताने मुझे बुलाकर स्वयं कहा है। इस बातको मैं अपनी ओरसे कहता हूँ कि आपको अपनी पुत्रीके लिये इससे अच्छा वर दूसरी जगह कठिनतासे मिलेगा।'

प्रसन्नता प्रकट करते हुए सनातन मिश्रने कहा—'निमाई पण्डित कोई अप्रसिद्ध मनुष्य तो हैं ही नहीं। देशभरमें उनका यशोगान हो रहा है। उन्हें जामाता बनानेमें मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। मेरी भी चिरकालसे यही इच्छा थी, किन्तु इसी संकोचसे आजतक किसीपर प्रकट नहीं की कि वे सम्भव है स्वीकार न करें।'

घटकने कहा—'इस बातकी आप तनिक भी चिन्ता न करें, शचीदेवी जो कह देंगी वही होगा, निमाई उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते।'

सनातन मिश्रके घरमें जब स्त्रियोंने यह बात सुनी तो उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। कोई कहने लगी—'लड़कीका भाग्य खुल गया।' कोई-कोई विष्णुप्रियाके ही सामने कहने लगी—'इतने दिनका इसका गङ्गा-स्नान और विष्णु-पूजा आज सफल हुई, साक्षात् विष्णुके ही समान इसे वर मिल गया।' ये सब बातें सुनकर विष्णुप्रिया लजाती हुई उठकर दूसरी ओर चली गयी। स्त्रियाँ और भी भाँति-भाँतिकी बातें करने लगीं।

राजपण्डित सनातन मिश्रकी स्वीकृति लेकर घटक महाशय सीधे शचीमाताके समीप पहुँचे और उन्हें यह शुभ संवाद सुना दिया। सुनकर शचीमाताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसी समय विवाहकी तिथि आदि भी निश्चय करा दी।

सनातन मिश्रके यहाँ तिथि आदिकी सभी बातें पक्की करके काशीनाथ घटक आ ही रहे थे, कि रास्तेमें अकस्मात् उनकी निमाई पण्डितसे भेंट हो गयी। निमाईने उन्हें आलिङ्गन करते हुए कहा—'किधरसे आ रहे हैं? आप तो सदा घटाया ही करते हैं। कहिये किसे घटाकर आये हैं?'

हँसते हुए घटकने कहा—'घटाकर तो नहीं आये हैं बढ़ानेकी ही फिक्र है, तुम्हें एकसे दो करना चाहते हैं। बताओ, क्या सलाह है?'

कुछ आश्चर्य-सा प्रकट करते हुए निमाई पण्डितने कहा—'मैं आपकी बातका मतलब नहीं समझा। कैसा बढ़ाना, स्पष्ट बताइये?'

जरा आवाजको बढ़ाते हुए जोर देकर घटकने कहा—'राजपण्डित सनातन मिश्रकी पुत्रीके साथ तुम्हारे परिणयकी बातें पक्की करके आ रहा हूँ। बताओ तुम्हें मंजूर है न?'

बड़े जोरसे हँसते हुए इन्होंने कहा—'हहाहा ! हमारा विवाह ? और राजपण्डितकी पुत्रीके साथ ! हमें तो कुछ भी पता नहीं।' यह कहते-कहते ये हँसते हुए घर चले गये।

घटकको इनकी सूखी हँसीमें कुछ सन्देह हुआ। सनातन मिश्रके यहाँ भी खबर पहुँच गयी। सुनते ही घरभरमें सुस्ती छा गयी। सनातन मिश्रने कहा—'जिस बातकी शंका थी, वही हुई। मैं पहिले ही जानता था, निमाई स्वतन्त्र प्रकृतिके पुरुष हैं, वे भला, इस प्रकार सम्बन्धको कब मंजूर करनेवाले थे ! हुआ तो कुछ भी नहीं, उल्टी मेरी सब लोगोंमें हँसी हुई। सबको पता चल गया है कि लड़कीका विवाह निमाई पण्डितके साथ होगा। यदि न हो सका तो मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है।' यह सोचकर उन्होंने उसी समय काशीनाथ घटकको बुलाया और अपनी चिन्ताका कारण बताकर शीघ्र ही शचीमातासे इसके सम्बन्धमें निश्चित उत्तर ले आनेकी प्रार्थना की।

घटक महाशय उसी समय शचीमाताके समीप गये और राजपण्डितकी चिन्ताका सभी वृत्तान्त कह सुनाया। सब कुछ सुनकर शचीमाताने कहा—'निमाई मेरी बातको कभी टालता नहीं है, इसीलिये मैंने उससे इस सम्बन्धमें कुछ भी पूछ-ताँछ नहीं की। आज वह पाठशालासे आवेगा तो मैं उससे पूछ लूँगी। मेरा ऐसा विश्वास है, वह मेरी बातको टाल नहीं सकता। कल मैं तुम्हें इसका ठीक-ठीक उत्तर दूँगी।' माताका ऐसा उत्तर सुनकर घटक अपने घरको चले गये।

इधर जब शामको पाठशालासे पढ़ाकर निमाई घर आये तब माताने इधर-उधरकी दो-चार बातें करके बड़े प्रेमसे कहा—'निमाई बेटा ! मैं एक बात पूछना चाहती हूँ। क्या सनातन मिश्रवाला सम्बन्ध तुझे मंजूर नहीं है ? लड़की तो बड़ी सुशील और चतुर है। मैं उसे रोज गङ्गाजीपर देखती हूँ।'

कुछ लजाते हुए निमाईने कहा—'मैं क्या जानूँ, जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो !' माताको यह उत्तर सुनकर सन्तोष हुआ। इन्होंने अपनी माताके सन्तोषार्थ स्वयं एक मनुष्यके द्वारा सनातनके यहाँ विवाहकी तैयारी करनेकी खबर भेज दी। इस खबरके पाते ही सनातन मिश्रके घरमें फिरसे दुगुना आनन्द छा गया और वे धूम-धामके साथ पुत्रीके विवाहकी तैयारियाँ करने लगे।

इधर निमाई पण्डितके पास इतना द्रव्य नहीं था, कि वे राजपण्डित-की पुत्रीके साथ खूब समारोहके साथ विवाह कर सकें। इसके लिये वे कुछ चिन्तित-से हुए। धीरे-धीरे इस बातकी खबर इनके सभी विद्यार्थी तथा स्नेहियोंको लग गयी। विद्यार्थी बड़े प्रसन्न हुए और आ-आकर कहने लगे—'गुरुजी ! ज्योंनारकी मिठाइयाँ तो खूब खानेको मिलेंगी। सनातन तो राजपण्डित ठहरे। खूब जी खोलकर विवाह करेंगे। बढ़िया-बढ़िया मिठाइयाँ बनावेंगे। खूब आनन्द रहेगा।' ये सबकी बातें सुनकर हँस देते।

उस समय नवद्वीपमें बुद्धिमन्त खाँ ही सबसे बड़े जमींदार थे। वे उस समयके एक प्रकारसे नवद्वीपके राजा ही समझे जाते। निमाई पण्डित-से वे बहुत स्नेह करते थे। इनके विवाहकी बात सुनकर वे इनके पाठशालामें आये। जिनके चण्डी-मण्डपमें ये पढ़ाते थे, वे मुकुन्द संजय भी वहीं बैठे थे। उन्होंने इनका आगत-स्वागत किया। बुद्धिमन्त खाँने कहा—'पण्डितजी ! सुना है आप दूसरा विवाह कर रहे हैं ? यह बात कहाँ-तक सच है ? सुना है अबके राजपण्डितकी पुत्री पसंद की है ?'

कुछ लजाते हुए इन्होंने कहा—'आप जो भी सुनेंगे सब सत्य ही होगा। भला, आपके सामने झूठ बात कहनेकी किसकी हिम्मत हो सकती है ?'

इस उत्तरसे प्रसन्न होकर बुद्धिमन्त खाँने कहा—'तब तो खूब मिठाई खानेको मिलेगी। हाँ, एक प्रार्थना मेरी है, इस विवाहका सम्पूर्ण खर्च मेरे जिम्मे रहा।'

बीचमें ही मुकुन्द संजय बोल उठे—'वाह साहब! सब आपका ही रहा, हम वैसे ही रहे। कुछ हमें भी तो अवसर दीजिये। अकेले-ही-अकेले आनन्द उठा लेना ठीक नहीं।'

हँसते हुए बुद्धिमन्त खाँने जवाब दिया—'आप भी अपनी इच्छा पूर्ण कर लें। कुछ मिलमंगे ब्राह्मणका विवाह थोड़े ही है। राजपण्डितकी पुत्रीके साथ शादी है। राजकुमारकी ही भाँति खूब ठाट-बाटसे विवाह करेंगे। आप जितना भी चाहें खर्च कर लें।' इस प्रकार विवाहके सम्पूर्ण खर्चका भार तो इन दोनों धनिकोंने अपने ऊपर ले लिया। अब निमाई इस बातसे तो निश्चिन्त हो गये, फिर भी उन्हें बहुत-सा काम स्वयं ही करना था। उसके लिये वे विद्यार्थियोंकी सहायतासे स्वयं ही सब काम करने लगे।

सभी बड़े-बड़े पण्डितोंको निमन्त्रित किया गया। विद्वन्मण्डलीमेंसे ऐसा एक भी पण्डित नहीं बचने पाया जिसके पास निमन्त्रण न पहुँचा हो। इधर पूर्वोक्त दोनों धनाढ्योंने विवाहके लिये गाने-नाचनेका, आतिशबाजी-फुलवारीका, अच्छे-अच्छे बाजोंका तथा और भी सजावटके बहुत-से सामानोंका भलीभाँति प्रबन्ध किया। नियत तिथिके दिन अपने स्नेही बहुत-से पण्डित, विद्यार्थियों तथा अन्य गण्य-मान्य सज्जनोंके साथ बरात सजाकर निमाई पण्डित विवाहके लिये चले। वे आगे-आगे पालकीमें जा रहे थे। दोनों ओर चमर डुर रहे थे। सबसे आगे भाँति-भाँतिके बाजे बज रहे थे। इस प्रकार खूब समारोहके साथ वे सनातन मिश्रके द्वारपर जा पहुँचे। मिश्रजीने सब लोगोंका यथोचित खूब सम्मान किया। सभीके ठहरने, खाने-पीने और

मनोरञ्जनका उन्होंने बहुत ही उत्तम प्रबन्ध कर रखा था। उनके स्वागत-सत्कारसे सभी लोग अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।

गोधूलिके शुभ लग्नमें निमाई पण्डितने विष्णुप्रियाका पाणिग्रहण किया। ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन पढ़ा, वेदज्ञोंने हवन कराया। इस प्रकार विवाहके सभी लौकिक तथा वैदिक कृत्य बड़ी ही उत्तमताके साथ समाप्त हुए। विष्णुप्रियाने पतिदेवके चरणोंमें आत्मसमर्पण किया और निमाईने उन्हें वामाङ्ग करके स्वीकार किया। सनातन मिश्रने बहुत-सा धन तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण निमाईके लिये भेंटमें दिये। इन सब कार्योंके हो जाने-पर विवाहके सब कार्य समाप्त किये गये।

दूसरे दिन सनातन मिश्रने सभी विद्वान् पण्डितोंकी सभा की। उनकी योग्यतानुसार यथोचित पूजा की और द्रव्यादि देकर खूब सत्कार किया। तीसरे दिन विष्णुप्रियाके साथ दोला (पालकी) में चढ़कर निमाई अपने घर आये। चिरकालसे जिसे अपनी पुत्र-वधू बनानेके लिये माता उत्सुक थी, आज उसे ही पुत्रके साथ अपने घरमे आयी देखकर माताकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। वह उस युगल जोड़ीको देखकर मन-ही-मन अत्यन्त ही प्रसन्न हो रही थी।

घरमें घुसते समय चौखटमें उँगली पिच जानेके कारण विष्णुप्रियाके कुछ खून निकल आया था। इसे अपशकुन समझकर उनका चित्त पहले तो कुछ दुखी हुआ था, किन्तु थोड़े दिनोंमें वे इस बातको भूल गयी थीं। जब निमाई संन्यास लेकर चले गये, तब उन्हें यह घटना याद आयी थी और वह उसे स्मरण करके दुखी हुई थीं।

इस प्रकार विष्णुप्रियाको पाकर निमाई अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और विष्णुप्रिया भी अपने सर्वगुणसम्पन्न पतिको पाकर परम आह्लादित हुईं।

प्रकृति-परिवर्तन

परोपदेशकुशला दृश्यन्ते बहवो जनाः।
स्वभावमतिवर्तन्तः सहस्रेष्वपि दुर्लभाः॥*

(सु० र० भां० ७७ । ४

बाल्यावस्थाका स्वभाव आगे चलकर धीरे-धीरे बदल जाता है, किन्तु युवावस्थामें जो स्वभाव बन जाता है, उसका परिवर्तित होना अत्यन्त ही कठिन है। अवस्था ज्यों-ज्यों प्रौढ़ होती जाती है, त्यों-त्यों स्वभावमें भी प्रौढ़ता होने लगती है और फिर जिस मनुष्यका जैसा स्वभाव होता है वही उसका आगेके लिये स्वाभाविक गुण बन जाता है। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि बहुत-से लोगोंका जीवन एकदम पलट जाता है, वे क्षणभरमें ही कुछ-से-कुछ बन जाते हैं। आज जो महाविषयी-सा प्रतीत होता है, वही कल परम वैष्णवोंके-से आचरण करने लगता है। जिसे हम कलतक आवारा-लफंगा कहकर पुकारते थे, थोड़े दिनोंमें सहस्रों नर-नारी सिद्ध महात्मा मानकर उसीकी पूजा-अर्चा करते हुए देखे गये हैं, किन्तु ऐसा परिवर्तन

---

* दूसरोंको बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे उत्तम-से-उत्तम उपदेश करनेवाले तो ऐसे सुचतुर पण्डित मिल जायँगे, किन्तु जो एकदम अपने स्वभावको ही पलट दे ऐसे पुरुष हजारोंमें भी दुर्लभ हैं। कहीं करोड़ोंमें कोई ऐसे पुरुष निकलते हैं।

सभी पुरुषोंके जीवनमें नहीं होता। ऐसे तो कोई विरले ही भाग्यशाली महापुरुष होते हैं।

प्रायः देखा गया है, कि मनुष्य जब प्राकृतिक विचारोंसे ऊँचे उठने लगता है, तब हृदयके परिवर्तनके साथ उसके शरीरमें भी परिवर्तन हो जाता है। शरीरके सभी अवयव स्वभावके ही अनुसार बने हैं, मनुष्य जैसे-जैसे प्राकृतिक विचारोंको छोड़ने लगता है वैसे-वैसे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी बदलते जाते हैं। साधारण लोग उस परिवर्तनको रोग समझने लगते हैं। जो एकदम प्रकृतिसे ऊँचा उठ गया है, फिर उसका पाञ्चभौतिक शरीर अधिक काल स्थिर नहीं रह सकता। क्योंकि शरीरके स्थायित्वके लिये रजोगुणजन्य प्राकृतिक अहंभावकी कुछ-न-कुछ आवश्यकता पड़ती ही है। तभी तो परम भावुक ज्ञानी और प्रेमी अल्पावस्थामें ही इस शरीरको त्याग जाते हैं। श्रीशंकराचार्य, चैतन्यदेव, ज्ञानेश्वर, रामतीर्थ, जगद्बन्धु ये सभी परम भावुक भगवत्-भक्त प्रकृतिसे अत्यन्त ऊँचे उठ जानेके ही कारण इस शरीरको अधिक दिन नहीं टिका सके। कोई-कोई महापुरुष अपने सत्सङ्कल्पका कुछ अंश देकर लोक-कल्याणकी दृष्टिसे उस अवस्थामें पहुँचने-पर भी कुछ कालके लिये इस शरीरको टिकाये रहते हैं, फिर भी उनमें भावुकताकी अपेक्षा ज्ञानांशकी कुछ अधिकता होती है, तभी वे ऐसा कर सकते हैं। भावुकताकी चरम सीमापर पहुँचनेपर तो संकल्प करनेका होश ही नहीं होता।

जब हृदयमें सहसा प्रबल भावुकताका उदय होता है, तो निर्बल शरीर उसका सहन नहीं कर सकता। किसी-किसीका शरीर तो उसी वेगमें शान्त हो जाता है, बहुत-से उसे सहन तो कर लेते हैं, किन्तु पागल हो जाते हैं, कुछ कर-धर नहीं सकते। जिनसे भगवान्को कुछ काम कराना होता है, वे उस वेगको पूर्णरीतिसे सहन करनेमें समर्थ होते हैं किन्तु शरीर-

पर उसका कुछ-न-कुछ असर पड़ना तो स्वाभाविक ही है, इसलिये उनके शरीरमें या तो वायुरोग हो जाता है या अतिसार। बहुधा इन दो भयंकर रोगोंके द्वारा ही उस भावका शमन हो सकता है। संसारी लोगोंको ये रोग प्रायः चालीस-पचास वर्षकी अवस्थाके बाद हुआ करते हैं, किन्तु जिन लोगोंके शरीरमें प्रबल भावुकताके उदय होनेके उद्वेगमें ये रोग होते हैं, उनके लिये कोई नियम नहीं, कभी हो जाय। असलमें उनके ये रोग साधारण लोगोंके रोगकी भाँति यथार्थ रोग नहीं होते, किन्तु वे रोग-से ही प्रतीत होते हैं और भावोंके शमन होनेपर आप ही शान्त हो जाते हैं। परमहंस रामकृष्णदेवको युवावस्थामें ही यह उद्वेग उत्पन्न हुआ। किसी-ने उसे वायुरोग, किसीने मस्तिष्करोग और किसीने वीर्योन्मादरोग बताया। उनके परम भक्त मथुरा बाबू तो चिकित्सकोंके कहनेसे उन्हें वेश्याओंतकके यहाँ ले गये, किन्तु उन्हें उन्माद या वायुरोग हो तब तो। वहाँ भी वे छोटे बालककी भाँति क्रीड़ा करते रहे। सालों वे अतिसारके भयंकर रोगसे पीड़ित बने रहे। उनके इस भावको एक ब्राह्मणीने ही समझा। पीछेसे उनके बहुत-से भक्त भी समझ गये। चिकित्सक, इन्हें अन्ततक वायुरोग बताते रहे और बोलनेसे मना करते रहे, किन्तु इन्होंने शरीरको टिका ही इसलिये रखा था, चिकित्सकोंके मना करनेपर भी धाराप्रवाह बोलते रहे, अन्तमें गलेमें फोड़ा-सा हुआ और उसीकी भयंकर वेदनामें महीनों बिताकर वे इस नश्वर शरीरको त्याग गये। गलेके फोड़ेको चिकित्सक लोग अधिक बोलनेका विकार बताते, उसके कारण इतनी पीड़ा होती कि तोलेभर दूध पीनेमें भी उन्हें महाकष्ट होता था, किन्तु इस अवस्थामें भी वे भक्तोंको उपदेश तो निरन्तर करते ही रहे। चिकित्सकोंके बार-बार जोर देकर मना करनेपर वे कह देते—'अब इस शरीरका बनेगा ही क्या ? इससे जिसका जितना भी उपकार हो सके उतना ही उत्तम है।' क्योंकि वे शरीरके प्राकृतिक स्वभावसे एकदम ऊँचे उठ गये थे।

अब निमाई पण्डितके भी प्रकृति-परिवर्तनका समय आया। निमाई परम भावुक थे, यदि सचमुच उनके हृदयमें एक साथ ही प्रबल भावुकता-की भारी बाढ़ आती, तो चाहे इनका शरीर कितना भी बलवान् क्यों नहीं था, वह उसका सहन कभी नहीं कर सकता। इसलिये इनकी भावुकताका उत्तरोत्तर विकास हुआ और अन्तमें तो वे शरीरको एकदम भूलकर समुद्रमें ही कूद पड़े। इनके जीवनमें प्रेमके जैसे उत्तरोत्तर अद्वितीय भाव प्रकट हुए हैं, वैसे भाव संसारका इतिहास खोजनेपर भी किसी प्रकटरूपसे उत्पन्न हुए महापुरुषके जीवनमे शायद ही मिलें! किसीके जीवनमें क्या, बहुतोंके जीवनमें ये भाव प्रकट हुए होंगे, किन्तु वे संसारकी दृष्टिसे दूर जाकर प्रकट हुए होंगे, संसारी लोगोंको उन भावोंका पता नहीं। चैतन्यके जीवनके भाव तो भक्तोंने प्रत्यक्ष देखे और उनके समकालीन लेखकोंने यथासाध्य उनका वर्णन करनेकी चेष्टा भी की है, किन्तु वे भाव तो अवर्णनीय हैं। संसारी भाषा इन अलौकिक भावोंका वर्णन कर ही कैसे सकती है?

सहसा एक दिन निमाई पण्डित रास्ता चलते-चलते पुस्तक फेंककर अपने घरकी ओर भाग पड़े। रास्तेके सभी लोग डर गये। इनकी सूरत विचित्र ही बन गयी थी। घर पहुँचकर इन्होंने घरके सभी बर्तनोंको आँगनमें निकाल-निकालकर फोड़ना प्रारम्भ कर दिया। माता अवाक् होकर इनकी ओर देखने लगीं। उनकी हिम्मत न हुई कि निमाईको ऐसा करनेसे रोकें। ये अपनी धुनमें मस्त थे। किसी भी चीजकी परवा नहीं करते। जो भी चीज मिल जाती उसे ही नष्ट करते। पानीको उलीचते, अन्नको फेंकते और वस्त्रोंको बीचसे फाड़ देते थे। माता बाहर जाकर आस-पासके लोगोंको बुला लायी। लोगोंने इन्हें इस कामसे हटानेकी चेष्टा की, किन्तु जो भी इनकी ओर जाता, उसे ही ये मारनेके लिये दौड़ते। इसलिये किसीकी हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। जैसे-तैसे लोगोंने इन्हें हटाकर

शय्यापर सुलाया। चारों ओरसे विद्यार्थी तथा इनके स्नेही इनकी शय्याको घेरकर बैठ गये। अब ये निरन्तर पागलोंकी भाँति बकने लगे। लोगोंसे कहते—'हम साक्षात् विष्णु हैं, हमारी पूजा करो। संसारमें हम ही एकमात्र वन्दनीय तथा पूजनीय हैं। तुमलोग निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तन किया करो। संसारमें श्रीकृष्णका ही नाम सार है और सभी वस्तुएँ असार हैं। इस प्रकार ये न जाने क्या-क्या कहते रहे।

लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार भाँति-भाँतिके अनुमान लगाते। कोई कहता—'भूतव्याधि है।' कोई कहता—'किसी डाकिनी-शाकिनीका प्रकोप है।' कोई-कोई उपेक्षाकी दृष्टिसे कहता— 'अजी, बहुत बकवादका यही तो फल होता है, दिनभर शास्त्रार्थ करके विद्यार्थियोंके साथ मगजपच्ची करके तथा लोगोंको छेड़कर बका ही तो करते थे। इन्हें कभी किसीने चुपचाप तो देखा ही नहीं था। उसीका यह फल है, पागलपन है। मस्तिष्कका विकार है। गर्मी बढ़ गयी है और कुछ नहीं है।'

चिकित्सकोंने वायुरोग स्थिर किया। समाचार पाकर बुद्धिमन्त खाँ और मुकुन्द संजय ये सभी धनी-मानी सज्जन वैद्योंको साथ लेकर निमाईके घर दौड़े आये। सभी घबड़ा गये। ये लोग बड़े-बड़े धनिक थे। नाना प्रकारकी मूल्यवान् ओषधियाँ इनके यहाँ रहती थीं। वैद्योंकी सम्मतिसे विष्णुतैल, नारायणतैल आदि सुगन्धित और मूल्यवान् तैल इनके सिरमें मले जाने लगे। इनके सिरको तैलमें डुबाया गया, और भी भाँति-भाँतिके उपचार किये जाने लगे। इस प्रकार कई दिनोंमें धीरे-धीरे ये स्वस्थ हुए। यह देखकर इनके प्रेमियोंको परम प्रसन्नता हुई। धीरे-धीरे ये फिर पूर्वकी भाँति अपनी पाठशालामें जाकर अध्यापनका कार्य करने लगे।

अब इनके स्वभावमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। अब ये पहिलेकी

भाँति लोगोंसे छेड़खानी नहीं करते थे। इनमें बहुत कुछ गम्भीरता आ गयी। वैष्णवोंकी हँसी करना इन्होंने एकदम छोड़ दिया। इन्हें स्वस्थ देखकर लोग कहते—'भगवान्‌की बड़ी कृपा हुई आप स्वस्थ हो गये। यह शरीर नश्वर और क्षणभङ्गुर है, अब कुछ कृष्णकीर्तन भी करना चाहिये। आयुको इसी तरह बिता देना ठीक नहीं।' ये हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते और उनकी बातको स्वीकार करते। लोगोंको—विशेषकर वैष्णवोंको इनके इस स्वभाव-परिवर्तनसे परम प्रसन्नता हुई।

अब ये नियमितरूपसे भगवान्‌की पूजा और तुलसीपूजन आदि कार्योंको करने लगे। सन्ध्या-पूजा करके ये पढ़ानेके लिये जाते और सभी विद्यार्थियोंके सदाचारके ऊपर अत्यधिक ध्यान रखते। जिस विद्यार्थीके मस्तकपर तिलक नहीं देखते उसे ही बुलाकर कहते—'आज तिलक क्यों नहीं धारण किया है? फिर सबको सुनाकर कहते—'जिसके मस्तकपर तिलक नहीं, समझ लो आज वह बिना ही सन्ध्या-वन्दन किये चला आया है।' इस प्रकार जिसे भी तिलकहीन देखते उसे ही कहते—'पहिले घर जाकर सन्ध्या-वन्दन करके तिलक धारण कर आओ, तब आकर पाठ पढ़ना।' फिर आप समझाने लगते—'देखो भाई! सन्ध्या ही तो द्विजातियोंका सर्वस्व है। जो ब्राह्मण सन्ध्या-वन्दनतक नहीं करता उसे ब्राह्मण कह ही कौन सकता है! फिर वह पारमार्थिक उन्नति तो बहुत दूर रही, इहलौकिक उन्नति भी नहीं कर सकता। कहा भी है—

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाः शाखाः धर्मकर्मादि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

ब्राह्मणरूपी वृक्षकी सन्ध्या ही जड़ है। वेद ही उस वृक्षकी बड़ी-बड़ी चार शाखाएँ हैं और धर्म-कर्मादि ही उस वृक्षके सुन्दर-सुन्दर

पत्ते हैं इसलिये खूब सावधानीके साथ जल आदि देकर जड़की ही सेवा करनी चाहिये, क्योंकि जड़के नष्ट हो जानेपर न तो शाखा ही रह सकती है और न पत्ते ही।' आप कहते—'जो साठ घड़ीके दिन-रात्रिमेंसे दो घड़ी सन्ध्याके लिये नहीं निकाल सकता वह आगे उन्नति ही क्या कर सकता है?' इनके इस कथनका विद्यार्थियोंके ऊपर बड़ा ही प्रभाव पड़ता और वे सभी यथासमय उठकर स्नानादिसे निवृत्त होकर सन्ध्या-वन्दनादि करके तब पाठ पढ़ने आते। इन सभी बातोंसे विद्यार्थी इनके ऊपर बड़ा ही अनुराग रखने लगे और ये भी उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करने लगे।

ये भाव इनके हृदयमें भक्ति-भागीरथीके स्रोत उमड़नेके पूर्वके सूत्रपातमात्र ही हैं। निमाईके हृदयमें भक्तिके स्रोतका उदय तो श्रीगयाधाममें श्रीविष्णु भगवान्‌के पादपद्मोंके दर्शनसे ही होगा। वहींसे भक्ति-भागीरथीका प्रवाह नवद्वीप आदि पुण्यस्थानोंमें होकर अपनी द्रुतगतिसे समस्त प्राणियोंको पावन करता हुआ श्रीनीलाचलके महासागरमें एकरूप हो जायगा। यह बात नहीं कि नीलाचलमें जाकर प्रेमपयोधिमें मिलनेपर उस त्रितापहारी प्रेमसुधापूर्ण पावन प्रवाहकी परिसमाप्ति हो जायगी, किन्तु वह प्रवाह भगवती भागीरथीकी भाँति अखण्डरूपसे इस धराधामपर सदा प्रवाहित ही होता रहेगा, जिसमें अवगाहन करके प्रेमी भक्त सदा सुखशान्ति प्राप्त करते रहेंगे। इन सभी बातोंका वर्णन पाठकोंको अगले प्रकरणोंमें प्राप्त होगा।

भक्ति-स्रोत उमड़नेसे पहिले

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥*
(श्रीमद्भा० ११।२०।९)

भक्ति तथा मुक्तिका प्रधान और मुख्य कारण कर्म ही है। निष्काम और सकाम-भेदसे कर्म दो प्रकारका है। सकाम कर्म भुक्तिप्रद है। उससे

---

* वर्णाश्रमविहित कर्मोंको तबतक करते ही रहना चाहिये जबतक उनके प्रति पूर्णरूपसे वैराग्य न हो जाय अथवा भगवान्‌की कथाके श्रवणमें जबतक पूर्णरूपसे दृढ़ भक्ति न हो जाय। तात्पर्य यह कि, वर्णाश्रममें विहित कर्मोंके करनेके दो ही हेतु हैं या तो उनके द्वारा वैराग्य उत्पन्न होकर ज्ञान हो और ज्ञानके द्वारा मुक्ति अथवा भगवान्‌के कथाकीर्तनमें दृढ़ श्रद्धाद्वारा रति हो जाय और रतिसे भक्तिकी प्राप्ति हो।

भुः, भुवः और स्वः इन तीन ही लोकोंके भोग प्राप्त हो सकते हैं और निष्काम कर्मोंके द्वारा आत्मशुद्धि होकर साधक भक्ति तथा मुक्तिका अधिकारी बनता है।

जो हृदय-प्रधान साधक हैं उन्हें निष्काम कर्मोंके करते रहनेसे साधु-महात्माओंमें प्रीति उत्पन्न होती है। महात्माओंके अधिक संसर्गमें रहनेसे उन्हें भगवत्-कथाओंमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। भगवत्-कथाओंमें श्रद्धा होनेसे भगवद्गुणोंमें रति हो जाती है। भगवद्गुणोंमें रति होनेके बाद भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति ही अन्तिम साध्य वस्तु है, उसे ही पराकाष्ठा या परा भक्ति कहते हैं।

जो मस्तिष्क-प्रधान साधक होते हैं, उन्हें निष्काम कर्मोंके द्वारा आत्मशुद्धि होकर भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, फिर संसारी विषयोंसे वैराग्य होता है, वैराग्यसे उन्हें ज्ञानकी इच्छा उत्पन्न होती है और ज्ञानके द्वारा वे मुक्तिको प्राप्त कर सकते हैं। मुक्ति ही प्राणीमात्रका चरम लक्ष्य है। वही जीवोंकी एकमात्र साध्य वस्तु है। इसीलिये मुक्ति तथा भक्तिका प्रधान हेतु वर्णाश्रमविहित कर्म ही है। जबतक भगवत्-कथाओंमें पूर्णरूपसे श्रद्धा उत्पन्न न हो जाय, बिना भगवत्-कथा श्रवण किये चैन ही न पड़े अथवा जबतक संसारी विषयोंसे पूर्णरीत्या वैराग्य न हो जाय, चित्त सर्वदा इन संसारी भोगोंसे हटकर एकान्तवासके लिये लालायित न बना रहे तबतक सभी प्रकारके मनुष्योंको अपने-अपने अधिकारानुसार कर्तव्य-कर्मोंको करते ही रहना चाहिये। जो श्रद्धा तथा वैराग्यके पूर्व ही अज्ञानके वशीभूत होकर कर्मोंका त्याग कर देते हैं, वे नारकीय जीव हैं, वे स्वयं कर्मत्यागरूपी पापके द्वारा अपने लिये नरकके मार्गको परिष्कृत करते हैं। ऐसे पुरुष न तो भक्त बन सकते हैं और न ज्ञानी, वे इस संसार-चक्रमें ही पड़े घूमते रहते हैं।

कुछ ऐसे भी नित्यभक्त वा जीवन्मुक्त महापुरुष होते हैं, जिन्हें फिरसे कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं होती, वे पहिलेसे ही मुक्त अथवा भक्त होते हैं। शुक-सनकादि जन्मसे ही मुक्त थे। नारदादि पहिलेसे ही भक्त होकर उत्पन्न हुए, इनके लिये किसी प्रकारके विशेष कर्मोंके अनुष्ठानकी आवश्यकता नहीं हुई। इनमें आरम्भसे ही वैराग्य तथा भक्ति विद्यमान थी। इसीलिये शुक-सनकादि आरम्भसे ही ज्ञानी बनकर स्वेच्छापूर्वक विचरण करते रहे और नारदादि सदा हरि-गुण-गान करते हुए सभी लोकोंको पावन बनाते फिरे। अतएव इनके लिये आरम्भसे ही कोई कर्तव्य-कर्म नहीं था।

अब प्रश्न यह है, कि भक्ति तथा मुक्तिमें कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है? इनका उत्तर यही दिया जा सकता है कि या तो इनमेंसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं या दोनों ही श्रेष्ठ हैं। ये दोनों ही स्थिति सनातन हैं, सदासे प्राणियोंकी ये ही दो परम स्थिति सुनी गयी हैं। वेद-शास्त्रोंमें ज्ञानी-महर्षियोंने इन्हीं दो स्थितियोंका वर्णन किया है। 'तस्य तदेव मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नः' जिसके जो अनुकूल पड़े उसके लिये वही सर्वोत्तम है। हृदय और मस्तिष्ककी ये दो ही शक्तियाँ हैं। जिसमें जिसकी प्रधानता होगी, उसको वही मार्ग रुचिकर होगा। दूसरेसे उसे कोई प्रयोजन नहीं। वह तो अपने ही मार्गको सर्वस्व समझेगा।

अब यह प्रश्न उठता है, कि बहुधा भक्तोंको यह कहते सुना गया है कि 'हम तो मुक्तिको अत्यन्त तुच्छ समझते हैं, भक्तिके बिना मुक्तिको हम तो ठुकरा देते हैं।' इसके विपरीत ज्ञान-मार्गके साधकोंके द्वारा यह सुना गया है कि 'मुक्ति ही मनुष्यका चरम लक्ष्य है, भक्ति उसका साधन भले ही हो, किन्तु साध्य वस्तु तो मुक्ति ही है। मुक्तिके बिना परम शान्ति नहीं।' इनमेंसे किसकी बात मानें? दो बातें तो

ठीक हो नहीं सकतीं। फिर वे दो ऐसी बातें जो परस्परमें एक दूसरेके विरुद्ध हों।

यदि ध्यानपूर्वक इन दोनों बातोंपर विचार किया जाय तो इन दोनोंमें कोई विरोध नहीं मालूम पड़ता। लोकमें भी देखा जाता है, कि जिस मनुष्यको जो वस्तु अत्यन्त प्रिय होती है, वह कहता है 'मैं तो इससे बढ़कर त्रिलोकीमें कोई वस्तु नहीं समझता।' उसके कथनका अभिप्राय इतना ही है, कि मुझे तो यही वस्तु अत्यन्त प्रिय है, मेरे लिये तो इससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। 'नहीं' कहनेसे उसका अभिप्राय अन्य वस्तुओंके 'अभाव' से न होकर 'प्रिय' से है। अर्थात् मुझे इसके सिवा दूसरी वस्तु प्रिय नहीं है। उसका कथन एक प्रकारसे ठीक भी है, जबतक उसकी उस वस्तुके प्रति अनन्यता न हो जायगी तबतक उसमें प्रीति कही ही नहीं जा सकती। इसी प्रकार भक्तिका मार्ग जिन्होंने ग्रहण किया है, उनके लिये ज्ञानके द्वारा मुक्ति प्राप्त करना कोई वस्तु ही नहीं है और जिन्होंने ज्ञानके मार्गसे जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है, उनके लिये किसी भी प्रकारके नाम-रूपका चिन्तन करना महान् विघ्न है। ये हम साधारण लोगोंके समझनेके लिये साधारण-सी दलीलें हैं। वास्तवमें तो भक्ति तथा मुक्ति दो वस्तु हैं ही नहीं। एक ही वस्तुको दो नामोंसे पुकारते हैं, अपनी भावनाके ही अनुसार एक प्रिय वस्तुको दो रूपोंमें देखते हैं। साध्य तो एक ही है उसे चाहे भक्ति कह लो या मुक्ति। और उसका साधन भी एक ही है अनासक्तभावसे भगवत्-सेवा या कर्तव्य समझकर निष्काम कर्म। हाँ, करनेकी प्रक्रियाएँ पृथक्-पृथक् अवश्य हैं, जिनका रुचि-वैचित्र्य-के कारण अधिकारी-भेदसे पृथक्-पृथक् होना आवश्यक ही है। एकमें त्याग ही प्रधान है, घरको त्यागो, संगको त्यागो, आसक्तिको त्यागो, नाम-रूपको त्यागो, फिर अपने आपको भी त्याग दो। दूसरेमें प्रेमकी प्रधानता है, अच्छे पुरुषोंसे प्रेम करो, भगवद्भक्तोंसे प्रेम करो, भगवत्-

चरित्रोंसे प्रेम करो, प्रेमसे प्रेम करो। फिर जाकर प्रेममें समा जाओ। ये मुक्ति-भक्ति दो मार्ग हैं।

महाप्रभु चैतन्यदेवका जीवन तो भक्तिमार्गका एक प्रधान स्तम्भ है। उनके जीवनमें शुद्ध भक्तिका परम पवित्र स्वरूप है, उसमें पक्षपातका लेश नहीं, दूसरे मार्गके प्रति विद्वेष नहीं। किसी भी कर्मकी उपेक्षा नहीं। संकुचित भावोंकी गन्ध नहीं। वहाँ तो शुद्ध प्रेम है! ज्यों-ज्यों आगे बढ़ना चाहो त्यों-ही-त्यों अधिकाधिक प्रेम करो, यही शिक्षा उसमें ओत-प्रोतरूपसे भरी पड़ी है। उनका नाम लेकर आज जो बातें कही जाती हैं, वे चैतन्यदेवकी कभी हो ही नहीं सकतीं। इसका साक्षी उनका प्रेममय जीवन ही है। ये साम्प्रदायिक विचार तो पीछेके संकुचित बुद्धिवाले लोगोंके मस्तिष्कसे निकले हैं। अपनी चीजका नाम कोई जो चाहे रख ले। कोई रोकनेवाला थोड़े ही है। चैतन्यका जीवन तो परम प्रेममय, सभीको आश्रय देनेवाला परम महान् है, उसमें भला साम्प्रदायिक संकुचित भावों-का क्या काम? इनके हृदयमें प्राणीमात्रके भावोंका आदर था।

निमाई पण्डितका अब दूसरा विवाह हो गया है। विष्णुप्रिया उनके सब प्रकारसे अनुकूल आचरण करती हैं। उनका स्वभाव हँसमुख है, वे सुशीला हैं, गृहकार्योंमें चतुर हैं और अत्यन्त ही पतिपरायणा हैं, वे अपने पतिको ही सर्वस्व समझती हैं। यह सब होते हुए भी निमाईका चित्त अब उदास ही रहता है। पता नहीं क्यों? अब उनकी वह चपलता न जाने कहाँ चली गयी? घंटों एकान्तमें न जाने क्या सोचा करते हैं? अब उन्हें संसारी बातोंसे अनुराग नहीं है। अब उनका हृदय किसी विशेष वस्तुके लिये छटपटाता-सा दिखायी पड़ता है। अब वे अपनेमें किसी एक विशेष अभावका-सा अनुभव करने लगे हैं। इस बातसे उनके सभी स्नेही चिन्तित रहते हैं।

जब हृदयमें किसी प्रबल भावका आगमन होनेको होता है, तो उसके पूर्व हृदय एक प्रकारके अभावका अनुभव करने लगता है। जी चाहता है, कहीं चलकर अपनी प्रिय वस्तुको ले आवें। ऐसी ही दशामें लोग तीर्थोंमें जाते हैं। तीर्थोंमें अच्छे-अच्छे धार्मिक लोगोंके सत्संगका सुयोग प्राप्त होता है, विरक्त साधु-महात्माओंके दर्शन होते हैं। उनके सत्संग तथा सदुपदेशसे हृदयमें एक प्रकारकी शान्ति होती है। इसलिये निमाईकी भी इच्छा तीर्थ-भ्रमण करनेकी हुई।

बंगालमें सकामकर्मोंकी प्रधानता है, वहाँके बहुत ही कम मनुष्य निष्कामकर्मका महत्त्व जानते हैं। अधिकांश लोग किसी-न-किसी कामनासे ही सम्पूर्ण धार्मिक कार्योंको करते हैं। सकाम कर्मोंमें पितृश्राद्धको बहुत महत्त्व दिया गया है। स्मृतियोंमें तो पितृकर्मोंको देवकर्मोंसे भी अधिक महत्ता दी गयी है। गृहस्थियोंके लिये पितृकर्म ही मुख्य बताये गये हैं। पितृकर्मोंमें गयाधाममें जाकर पितरोंके श्राद्ध करनेका बहुत भारी माहात्म्य वर्णन किया गया है, इसलिये प्रतिवर्ष बंगालसे लाखों मनुष्य गयाजीमें पितृश्राद्ध करने आते हैं। दूसरे प्रान्तोंसे भी बहुत बड़ी संख्यामें यात्री गयाजी पितृश्राद्ध करने आते हैं, किन्तु बंगालमें इसका प्रचार अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा विशेष है। अबकी बार अन्य लोगोंके साथ निमाई पण्डितने भी गयामें जाकर अपने पिताका श्राद्ध कर आनेका विचार किया। किन्तु इनके विचारमें अन्य लोगोंकी भाँति सकाम भावना नहीं थी, ये तो अपने अभावको दूर करने और धार्मिक लोगोंके भावोंका आदर करनेके निमित्त ही गयाजी जाना चाहते थे।

श्रीगयाधामकी यात्रा

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥*

(गीता ३। २१)

आश्विन शुक्ला दशमीका दिवस है। आजके ही दिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने लङ्कापर विजय प्राप्त करनेके लिये चढ़ाई की थी। घर-घर आनन्द मनाया जा रहा है। आजके ही दिन वर्षाकालकी परिसमाप्ति समझी जाती है। व्यापारी आजके ही दिन वाणिज्यके निमित्त विदेशोंकी यात्रा करते हैं। नृपतिगण आजके ही दिन दूसरे देशोंको दिग्विजय करनेके निमित्त अपनी-अपनी सेनाओंको सजाकर राज्य-सीमासे बाहर होते हैं। चार महीने एक ही स्थानपर रहनेवाले परिव्राजक आजके ही दिन फिरसे भ्रमण करना आरम्भ कर देते हैं। तीर्थयात्रा करनेवाले भी आजके ही दिन यात्राके लिये प्रस्थान करते हैं। अबके नवद्वीपसे भी बहुत-से यात्री गया-धामकी यात्रा करने जा रहे थे। गौराङ्गके मौसा पं० चन्द्रशेखर भी गया-को जाना चाहते थे, उन्होंने अपनी इच्छा निमाईको जतायी। सुनते ही इन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। माताकी आज्ञा लेकर इन्होंने भी अपने कुछ स्नेही तथा छात्रोंके साथ गयाजीकी यात्राका निश्चय किया। सब सामान जुटाकर अन्य लोगोंको साथ लेकर ये गयाधामके लिये चल पड़े।

इस प्रकार ये अपने सभी साथियोंके साथ आनन्द मनाते और प्रेममें

---

* श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अन्य साधारण लोग उसी भाँति उसका अनुकरण करते हैं, जिस बातको वे प्रमाण मानते हैं उसे ही दूसरे लोग भी प्रामाणिक समझते हैं।

ब्राह्मण नहीं हैं केवल ब्रह्मबन्धु हैं (अर्थात् केवल नाममात्रके ही ब्राह्मण हैं, बस, जिन्होंने ब्राह्मण-वंशमें जन्म ही भर ग्रहण किया है) उनका तो इतना सत्कार नहीं करना चाहिये । वे तो केवल काष्ठकी हस्तीके समान नाममात्रके ही ब्राह्मण हैं, जैसे काष्ठके हाथीसे हाथीपनेका कोई भी काम नहीं चलनेका, उसी प्रकार जो अपने धर्म-कर्मसे हीन है, जिसने विद्या प्राप्त नहीं की, उस नाममात्रके ब्राह्मणका हम आदर क्यों करें !'

निमाई पण्डितने थोड़ी देर सोचनेके अनन्तर कहा—'तुम्हारा कथन एक प्रकारसे ठीक ही है, जो अपने धर्म-कर्मसे रहित है, वह तो दूध न देनेवाली वन्ध्या गौके समान है, उससे संसारी स्वार्थ कोई सध नहीं सकता । फिर भी जो सभी कामोंको सकाम भावसे नहीं करते हैं, जो श्रद्धा-के साथ शास्त्रोंकी आज्ञानुसार अपनेको ही सुधारनेका सदा प्रयत्न करते रहते हैं, वे दूसरोंके दोषोंके प्रति उदासीन रहते हैं । हम दोषदृष्टिसे देखना आरम्भ करेंगे तब तो संसारमें एक भी मनुष्य दोषसे रहित दृष्टिगोचर नहीं होगा । संसार ही दोष-गुणके सम्मिश्रणसे बना है ! इसलिये अपनी बुद्धिको संकुचित बनाकर गौकी सेवा करनेमें यह बुद्धि रखना ठीक नहीं, कि जो गौ अधिक दूध देगी हम उसीकी सेवा करेंगे । जो दूध नहीं देती, उससे हमें क्या मतलब ? ऐसी बुद्धि रखनेसे तो विचारोंमें संकुचितता आ जायगी । तुम तो शास्त्रकी आज्ञा समझकर गौमात्रमें श्रद्धा रक्खो । यह तो स्वाभाविक ही होगा कि जो गौ सुशील, सुन्दर तथा दुधारी होगी, उसकी सभी लोग इच्छा-अनिच्छापूर्वक सेवा-शुश्रूषा करेंगे और अश्रद्धालु पुरुषोंको भी सुमिष्ट दूधके लालचसे प्रभावान्वित होकर ऐसी गौकी सेवा करते हुए देखा गया है, किन्तु यह सर्वश्रेष्ठ पक्ष नहीं है । सर्वश्रेष्ठ तो यही है, कि मनमें किसी भी प्रकारका पक्षपात न करके केवल शास्त्राज्ञा समझ-कर और अपना कर्तव्य मानकर गोब्राह्मणमात्रकी सेवा करें । किन्तु ऐसे श्रद्धालु संसारमें बहुत ही थोड़े होते हैं । भगवान्‌ने स्वयं क्रुद्ध हुए भृगुको

श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हुए मन्दार नामक स्थानमें पहुँचे। इस स्थानमें पहुँचकर इन्हें बड़े जोरोंसे ज्वर आ गया। इनके साथी इनकी ऐसी दशा देखकर बहुत अधिक चिन्तित हुए और भाँति-भाँतिके उपचार करने लगे, किन्तु इन्हें किसी प्रकार भी लाभ नहीं हुआ। अन्तमें इन्होंने अपनी ओषधि अपने-आप ही बतायी। इन्होंने कहा—'मेरी व्याधि इन प्राकृतिक ओषधियोंसे न जायगी। यह रोग तो असाध्य है, इसकी एकमात्र ओषधि है भगवत्कृपा! भगवान्‌की प्रसन्नताका सर्वश्रेष्ठ साधन है ब्राह्मणोंकी अर्चा-पूजा। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने अग्नि और ब्राह्मण अपने दो ही मुख बताये हैं, उनमें ब्राह्मणको ही सर्वोत्तम मुख बताया है। वे अपने श्रीमुखसे ही सनकादि महर्षियोंकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

नाहं तथाग्नि यजमानहविर्वितानेश्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः॥

अर्थात् भगवान् कहते हैं 'मेरे अग्नि और ब्राह्मण ये दो मुख हैं, इनमें ब्राह्मण ही मेरा श्रेष्ठ मुख है, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण कर्मोंको मेरे ही अर्पण कर दिया है और जो सदा सन्तुष्ट ही रहते हैं, ऐसा ब्राह्मण जो टपकते हुए घृतसे व्याप्त सुस्वादु अन्नके व्यञ्जनोंको खाता है, उसके प्रत्येक ग्रासके साथ मैं ही उस अन्नके रसका आस्वादन करता हूँ। उस ब्राह्मणकी तुष्टिसे जितना मैं तुष्ट होता हूँ, उतना यज्ञमें अग्निद्वारा, यजमानके अर्पण किये हुए हवि आदिसे नहीं होता।' जिन ब्राह्मणोंकी ऐसी महिमा साक्षात् भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे वर्णन की है, उन्हींका पादोदक पान करनेसे मेरा यह रोग शमन हो सकेगा।'

यह सुनकर एक सरल-से विद्यार्थीने प्रश्न किया—'गुरुजी! जो

ब्राह्मण नहीं हैं केवल ब्रह्मबन्धु हैं (अर्थात् केवल नाममात्रके ही ब्राह्मण हैं, बस, जिन्होंने ब्राह्मण-वंशमें जन्म ही भर ग्रहण किया है) उनका तो इतना सत्कार नहीं करना चाहिये। वे तो केवल काष्ठकी हस्तीके समान नाममात्रके ही ब्राह्मण हैं, जैसे काष्ठके हाथीसे हाथीपनेका कोई भी काम नहीं चलनेका, उसी प्रकार जो अपने धर्म-कर्मसे हीन है, जिसने विद्या प्राप्त नहीं की, उस नाममात्रके ब्राह्मणका हम आदर क्यों करें!'

निमाई पण्डितने थोड़ी देर सोचनेके अनन्तर कहा—'तुम्हारा कथन एक प्रकारसे ठीक ही है, जो अपने धर्म-कर्मसे रहित है, वह तो दूध न देनेवाली वन्ध्या गौके समान है, उससे संसारी स्वार्थ कोई सध नहीं सकता। फिर भी जो सभी कामोंको सकाम भावसे नहीं करते हैं, जो श्रद्धा-के साथ शास्त्रोंकी आज्ञानुसार अपनेको ही सुधारनेका सदा प्रयत्न करते रहते हैं, वे दूसरोंके दोषोंके प्रति उदासीन रहते हैं। हम दोषदृष्टिसे देखना आरम्भ करेंगे तब तो संसारमें एक भी मनुष्य दोषसे रहित दृष्टिगोचर नहीं होगा। संसार ही दोष-गुणके सम्मिश्रणसे बना है! इसलिये अपनी बुद्धिको संकुचित बनाकर गौकी सेवा करनेमें यह बुद्धि रखना ठीक नहीं, कि जो गौ अधिक दूध देगी हम उसीकी सेवा करेंगे। जो दूध नहीं देती, उससे हमें क्या मतलब! ऐसी बुद्धि रखनेसे तो विचारोंमें संकुचितता आ जायगी। तुम तो शास्त्रकी आज्ञा समझकर गौमात्रमें श्रद्धा रक्खो। यह तो स्वाभाविक ही होगा कि जो गौ सुशील, सुन्दर तथा दुधारी होगी, उसकी सभी लोग इच्छा-अनिच्छापूर्वक सेवा-शुश्रूषा करेंगे और अश्रद्धालु पुरुषोंको भी सुमिष्ट दूधके लालचसे प्रभावान्वित होकर ऐसी गौकी सेवा करते हुए देखा गया है, किन्तु यह सर्वश्रेष्ठ पक्ष नहीं है। सर्वश्रेष्ठ तो यही है, कि मनमें किसी भी प्रकारका पक्षपात न करके केवल शास्त्राज्ञा समझ-कर और अपना कर्तव्य मानकर गोब्राह्मणमात्रकी सेवा करें। किन्तु ऐसे श्रद्धालु संसारमें बहुत ही थोड़े होते हैं। भगवान्‌ने स्वयं क्रुद्ध हुए भृगुको

अपनी छातीमें जोरसे लात मारते देखकर यही नम्रताके दुःख प्रकट करते हुए कहा था—

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने।

अर्थात् हे ब्राह्मणदेव! आपके कोमल चरणारविन्दोंको मेरी इस पत्थरकी छातीमें लगनेपर बड़ा कष्ट हुआ होगा।

ये बहुत ऊँचे साधकके भाव हैं, जो संसारी मान-प्रतिष्ठा तथा धन और विषयभोगोंकी इच्छाको सर्वथा त्यागकर एकमात्र भगवत् कृपाको ही अपने जीवनका चरम लक्ष्य समझकर सभी कार्योंको करते हैं, उन्हींके लिये भगवान् अपने श्रीमुखसे फिर स्वयं उपदेश करते हैं—

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः।
वाण्यानुरागकलयारमजयद्गृणन्तः
सम्मोहयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः॥

'जो पुरुष वासुदेव-बुद्धि रखकर कठोर बोलनेवाले ब्राह्मणोंकी भी प्रसन्न अन्तःकरणसे कमलके समान प्रफुल्लित मुखद्वारा अपनी अमृतमयी वाणीसे प्रसन्नचित्त होकर स्तुति करते हैं और पिताके क्रुद्ध होनेपर जिस प्रकार पुत्रादि क्रुद्ध न होकर उनका सत्कार ही करते हैं, उसी प्रकार उन्हें प्रेमपूर्वक बुलाते हैं, तो समझ लो ऐसे पुरुषोंने मुझे अपने वशमें ही कर लिया है।' क्रुद्ध होनेवाले किसी भी प्राणीपर जो क्रोध नहीं करता वही सच्चा साधक और परमार्थी है। प्रभुके पाद-पद्मोंकी प्राप्ति ही जिसका एकमात्र लक्ष्य है, उसके हृदयमें दूसरोंके प्रति असम्मानके भाव आ ही नहीं सकते। इसलिये तुम लोग शीघ्र जाकर इस ग्रामके किसी ब्राह्मणका पादोदक लाकर मेरे मुखमें डाल दो।'

इनकी आज्ञा पाकर दो-तीन विद्यार्थी गये और एक परम शुद्ध

वैष्णव ब्राह्मणके चरणोंको धोकर उसका चरणोदक ले आये। यह तो इनकी लोगोंको ब्राह्मणोंका महत्त्व प्रदर्शित करनेकी लीला थी। चरणोदकका पान करते ही ये झटसे अच्छे हो गये और अपने सभी साथियोंके साथ आगे बढ़ने लगे। पुनपुना-तीर्थमें पहुँचकर इन सब लोगोंने पुनपुन् नामकी नदीमें स्नान किया और सभीने अपने-अपने पितरोंका श्राद्धादि कराया। इसके अनन्तर सभी श्रीगयाधाममें पहुँच गये।

ब्रह्मकुण्डमें स्नान और देव-पितृ-श्राद्धादि करके निमाई पण्डित अपने साथियोंके सहित चक्रवेड़ाके भीतर विष्णु-पाद-पद्मोंके दर्शनोंके निमित्त गये। ब्राह्मणोंने पाद-पद्मोंपर माला-पुष्प चढ़ानेको कहा। ये अपने विद्यार्थियोंके द्वारा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, माला आदि सभी पूजनकी बहुत-सी सामग्री साथ लिवाते गये थे। गयाधामके तीर्थ-पण्डा जोरोंसे पाद-पद्मोंका प्रभाव वर्णन कर रहे थे। वे उच्च स्वरसे कह रहे थे—'इन्हीं पाद-पद्मोंके धोवनसे जगत्-पावनी मुनि-मन-हारिणी भगवती भागीरथीकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं चरणोंका लक्ष्मीजी बड़ी ही श्रद्धाके साथ निरन्तर सेवन करती रहती हैं। इन्हीं चरणोंका ध्यान योगीजन अपने हृदय-कमलमें निरन्तर करते रहते हैं। इन्हीं चरणोंको प्रभुने गयासुरके मस्तकपर रखकर उसे सद्गति प्रदान की थी।'

असंख्य लोगोंकी भीड़ थी, हजारों आदमी पाद-पद्मोंके दर्शन कर रहे थे और बीच-बीचमें जय-घोष करते जाते थे। पण्डालोग उनसे भेंट चढ़ानेका आग्रह कर रहे थे। बार-बार पाद-पद्मोंका पुण्य-माहात्म्य सुनाया जा रहा था। पाद-पद्मोंका माहात्म्य सुनते ही निमाई पण्डित आत्मविस्मृत हो गये। उन्हें शरीरका होश नहीं रहा। शरीर थर-थर काँपने लगा, युगल अरुण ओष्ठ कोमल पल्लवकी भाँति हिलने लगे। आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बहने लगी। उनके चेहरेसे भारी तेज निकल रहा था। वे एकटक पाद-पद्मोंकी ही ओर निहार रहे थे। वे कहाँ खड़े हैं, उनके पास कौन है,

किसने उन्हें स्पर्श किया, इन सभी बातोंका उन्हें कुछ भी पता नहीं है। वे संज्ञाशून्य-से होकर काँप रहे हैं, उनका शरीर उनके वशमें नहीं है, वे मूर्छित होकर गिरनेवाले ही थे, कि सहसा एक तेजस्वी संन्यासीका सहारा लगनेसे वे गिरनेसे बच गये। उनके साथियोंने उन्हें पकड़ा और भीड़से हटाकर जल्दीसे बाहर ले गये। बाहर पहुँचकर उन्हें कुछ होश आया और वे निद्रासे उठे मनुष्यकी भाँति अपने चारों ओर आँखें उठा-उठाकर देखने लगे। सहसा उनकी दृष्टि एक लंबे-से तेजस्वी संन्यासीपर पड़ी। वे उन्हें देखकर एक साथ चौंक उठे, उनके आनन्दका पारापार नहीं रहा। इन्होंने दौड़कर संन्यासीजीके चरण पकड़ लिये। अपनी आँखोंसे अश्रुविमोचन करते हुए संन्यासीने इन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया। इनके स्पर्शमात्रसे संन्यासी महाशय बेहोश हो गये। दोनों ही आत्मविस्मृत थे। दोनोंको ही शरीरका होश नहीं था, दोनों ही प्रेममें विभोर होकर अश्रुविमोचन कर रहे थे। यात्री इन दोनोंके ऐसे अलौकिक प्रेमको देखकर आनन्द-सागरमें गोते खाने लगे। बहुत-से लोग रास्ता चलते-चलते खड़े हो गये। चारों ओरसे लोगोंकी भीड़ लग गयी। कुछ कालमें संन्यासीको कुछ-कुछ चेतना हुई। उन्होंने बड़े ही प्रेमसे इनका हाथ पकड़कर एक ओर बिठाया और अत्यन्त प्रेमपूर्ण वाणीसे वे कहने लगे—'निमाई पण्डित! आज मेरा भाग्योदय हुआ जो सहसा मुझे तुम्हारे दर्शन हो गये। नवद्वीपमें ही मेरा हृदय तुम्हारी ओर स्वाभाविक ही खिंचा-सा जाता था। मुझसे लोग कहते—'निमाई पण्डित कोरे पोथीके ही पण्डित हैं, बड़े चञ्चल हैं, देवता तथा वैष्णवोंकी खिल्लियाँ उड़ाते हैं। आप उन्हें अपना 'श्रीकृष्णलीलामृत' सुनाकर क्या लाभ उठावेंगे?' कोई-कोई तो यहाँतक कहता—'अजी, ये तो पूरे नास्तिक हैं। वैष्णवोंको छेड़नेमें ही इन्हें मजा आता है।' मैं उन सबकी बातें सुनता और चुप हो जाता। मेरा अन्तःकरण इन बातोंको कभी स्वीकार ही नहीं करता था। मैं बार-बार यही सोचता था—

निमाई पण्डित-जैसे सरस, सरल, सहृदय और भावुक पुरुष भक्तिहीन कभी हो नहीं सकते। इनके मुखका तेज ही इनकी भावी शक्तिका परिचय दे रहा है। आज आपके दर्शनके समयके भावको देखकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं रही। मैं कृतकृत्य हो गया। भगवत्-दर्शनसे जो आनन्द मिलता है, उसी आनन्दका मैं अनुभव कर रहा हूँ। मैं अपने आनन्दको प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ।' इतना कहते-कहते संन्यासी महाशयका गला भर आया। आगे वे कुछ और भी कहना चाहते थे, किन्तु कह नहीं सके। उनके नेत्रोंमेंसे अश्रुधारा अब भी पूर्ववत् बह रही थी।

संन्यासी महाराजकी बातें सुनते-सुनते इन्हें कुछ चेतना हो गयी थी। इसलिये रुँधे हुए कण्ठसे कुछ अस्पष्ट स्वरमें इन्होंने कहा—'प्रभो! आज मैं कृतार्थ हुआ। मेरी गया-यात्रा सफल हुई। मेरी असंख्यों पीढ़ियोंका उद्धार हो गया, जो यहाँ आनेपर आपके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीर्थमें श्राद्ध करनेपर तो उन्हीं पितरोंकी मुक्ति होती है, जिनके निमित्त श्राद्ध-तर्पणादि कर्म किये जाते हैं, किन्तु आप-जैसे परम भागवत वैष्णवोंके दर्शनसे तो करोड़ों पीढ़ियोंके पितर स्वतः ही मुक्त हो जाते हैं। सब लोगोंको आपके दर्शन दुर्लभ हैं। जिनका भाग्योदय होता है, उन्हींको आपके दर्शन होते हैं।' यह कहते-कहते इन्होंने फिरसे संन्यासी महाशयके चरण पकड़ लिये। संन्यासीजीने हठपूर्वक अपने चरण छुड़ाये और इन्हें प्रेमवाक्योंसे आश्वासन दिया। पाठक समझ ही गये होंगे ये संन्यासी महाशय कौन हैं। ये वे ही भक्ति-बीजके अंकुरित करनेवाले श्रीमन्माधवेन्द्रपुरीजीके सर्वप्रधान प्रिय शिष्य श्रीईश्वरपुरी हैं, जिन्हें अन्तिम समयमें गुरुदेव अपना सम्पूर्ण तेज प्रदान करके इस संसारसे तिरोहित हो गये थे। नवद्वीपके प्रथम मिलनमें ही ये निमाई पण्डितके अलौकिक तेज और अद्वितीय रूप-लावण्यपर मुग्ध होकर इन्हें एकटक देखते-के-देखते ही रह गये थे। इन्हें इस प्रकार देखते देखकर निमाई

पण्डितने हँसकर कहा था—'आज हमारे घर ही भिक्षा कीजियेगा, तभी हमे दिनभर भलीभाँति देखते रहनेका सुअवसर प्राप्त हो सकेगा।' उनकी प्रार्थनापर ये उनके घर भिक्षा करने गये थे और कुछ कालतक अपने स्वसम्पादित ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण-लीलामृत' को भी उन्हें सुनाते रहे। तभीसे पुरी महाशयके हृदय-पटलपर इनकी प्रेममयी मनोहर मूर्ति खिंच गयी थी। आज सहसा भेंट हो जानेपर दोनों ही आनन्दमें डूब गये और आनन्दके उद्वेगमें ही उपर्युक्त बातें हुई थीं।

पुरी महाशयकी आज्ञा लेकर निमाई पण्डित अपने स्थानके लिये विदा हुए। स्थानपर पहुँचकर इन्होंने साथियोंको संग लेकर गयाके सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंके दर्शन किये और वहाँ जाकर यथाविधि शास्त्रीत्यनुसार श्राद्ध और पिण्डादि पितृ-कर्म किये।

अन्तःसलिला भगवती फल्गुनदीमें जाकर इन्होंने पितरोंके लिये बालुकाके पिण्ड दिये। फल्गुका प्रवाह गुप्त है। उसका जल नीचे-ही-नीचे बहता है। ऊपरसे बालू ढकी रहती है। बालूको हटाकर जल निकाला जाता है और यात्री उसमें स्नान-सन्ध्यादि कृत्य करते हैं।

प्रेत-गया, राम-गया, युधिष्ठिर-गया, भीम-गया, शिव-गया आदि सोलहों गयामें निमाई पण्डितने अपने साथियोंके साथ जा-जाकर पितरोंके पिण्ड और श्राद्धादि कर्म किये, सब स्थानोंमें दर्शन तथा श्राद्ध करके ये अपने ठहरनेके स्थानपर लौट आये।

प्रेम-स्रोत उमड़ पड़ा

शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥*

(श्रीमद्भा० ११।२।३९)

संसारमें उन्हीं मनुष्योंका जीवन धारण करना सार्थक कहा जा सकता है, जिनके हृदय-पटलपर हर समय मुरलीमनोहर मुकुन्दकी मञ्जुल मूर्ति नृत्य करती रहती हो। जिनके कर्ण-रन्ध्रोंमें प्रतिक्षण मनोहर मुरलीकी मधुर

---

* रथाङ्गपाणि भगवान्‌के 'चक्रपाणि' 'गोपिजनवल्लभ' 'राधारमण' आदि सुन्दर और सुमनोहर नामोंका तथा उनके अर्थोंका गान और उनकी अलौकिक दिव्य-दिव्य लीलाओंका संकीर्तन करता हुआ श्रेष्ठ भक्त निर्लज्ज और निरीह होकर निःसंग-भावसे पृथ्वीपर विचरण करे।

तान सुनायी पड़ती रहती हो। जिनके चक्षु भगवान्‌की मूर्तिके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका दर्शन ही न करना चाहते हों, जिनका मनमधुप सदा भक्त-भय-हारी भगवान्‌के चरण-कमलोंका मधुरातिमधुर मकरन्द पान करता रहता हो, ऐसे शुभ-दर्शन भक्त स्वयं तो कृतकृत्य होते ही हैं, वे सम्पूर्ण संसारको भी अपनी पद-रजसे पावन बना देते हैं। उनकी वाणीमें उन्माद होता है, दृष्टिमें जीवोंको अपनी ओर आकर्षित करनेकी शक्ति होती है, उनके सभी कार्य अलौकिक होते हैं, उनके सम्पूर्ण कार्य लोकबाह्य और संसारके कल्याण करनेवाले ही होते हैं।

निमाई पण्डितकी हृदय-कन्दरामेंसे जो त्रैलोक्यपावन प्रेम-स्रोत उमड़नेवाला था, जिसका सूत्रपात चिरकालसे हो रहा था, अद्वैताचार्य आदि भक्तगण जिसकी लालसा लगाये वर्षोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे, उस स्रोतका पृथ्वीपर परिस्फुट होनेका सुहावना समय अब सन्निकट आ पहुँचा। जगत्-विख्यात गयाधामको ही उसके प्रकट करनेका अखण्ड यश प्राप्त हो सका। यही पावन पृथ्वी इसका कारण बन सकी। अहा 'वसुन्धरा पुण्यवती च तेन'। सचमुच वह वसुन्धरा बड़भागिनी है, जिसका संसर्ग किसी महापुरुषकी लोकविख्यात घटनाके साथ हो सके। वही संसारमें पावन तीर्थके नामसे विख्यात हो जाता है।

निमाई पण्डित अपने निवासस्थानपर अन्य साथियोंके साथ भोजन बना रहे थे। दाल-साग बनकर तैयार हो चुके थे। चूल्हेमेंसे थोड़ी अग्नि निकालकर दालको उसपर रख दिया था। साग दूसरी ओर चौकेमें ही रखा था। चूल्हेपर भात बन रहा था। निमाई उसे बार-बार देखते। चावल तैयार तो हो चुके थे, किन्तु उनमें थोड़ा-सा जल और शेष था, उसे जलानेके लिये और भातको शुष्क बनानेके लिये हमारे पण्डितने उसे ढक दिया था। थोड़ी देर बाद वे कटोरीको भातपरसे उतार ही रहे थे, कि इतनेमें ही उन्हें दूरसे पुरी महाशय अपनी ओर आते हुए दिखायी

दिये। कटोरीको ज्यों-की-त्यों ही पृथ्वीपर पटककर ये उनकी चरण-वन्दना करनेके लिये दौड़े। पुरीने प्रेमपूर्वक इनका आलिंगन किया और वे हँसते हुए बोले—'अपने स्थानसे किसी शुभ मुहूर्तमें ही चले थे, जो ठीक तैयारीके समयपर आ पहुँचे।'

नम्रताके साथ निमाई पण्डितने उत्तर दिया—'जिस समय भाग्योदय होता है और पुण्य-कर्मोंके संस्कार जाग्रत होते हैं, उस समय आप-जैसे महानुभावोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है। भोजन बिलकुल तैयार है, हाथ-पैर धोइये और भिक्षा करनेकी कृपा कीजिये।'

हँसते हुए पुरी महाशय बोले—'यह खूब कही, अपने लिये बनाये हुए अन्नको हमें ही खिला दोगे, तब तुम क्या खाओगे?'

नम्रताके साथ नीची निगाह करके इन्होंने उत्तर दिया—'अन्न तो आपहीका है, मैं तो केवल रन्धन करनेवाला पाचकमात्र हूँ, आज्ञा होगी तो और बना दूँगा।'

पुरीने देखा ये भिक्षा बिना कराये मानेंगे नहीं। इसलिये बोले—'अच्छा, फिरसे बनानेकी क्या आवश्यकता है, जो बना है उसीमेंसे आधा-आधा बाँटकर खा लेंगे। क्यों मंजूर है न? किन्तु हम ठहरे संन्यासी और तुम ठहरे गृहस्थी। हमारी भिक्षा होगी और तुम्हारा होगा भोजन। इस प्रकार कैसे काम चलेगा? तुम भी थोड़ी देरके लिये भिक्षा ही कर लेना।'

कुछ हँसते हुए निमाई पण्डितने कहा—'अच्छा, जैसी आज्ञा होगी, वही होगा। आप पहले हाथ-पैर तो धोवें।' यह कह इन्होंने अपने हाथोंसे पुरीजीके पैर धोये और उन्हें एक सुन्दर आसनपर बिठाया। पुरी महाशय बैठकर भोजन करने लगे। जब निमाई-जैसे प्रेमावतार परोसनेवाले हों, तब भला फिर किसकी तृप्ति हो सकती है, धीरे-धीरे इन्होंने आग्रह कर-करके सभी सामान पुरी महाशयको परोस दिया और वे भी प्रेमके वशीभूत

होकर सारा खा गये। अग्नि तो जल ही रही थी, क्षणभरमें ही दूसरी बार भी भोजन तैयार हो गया मानो अन्नपूर्णाने आकर स्वयं ही भोजन तैयार कर दिया हो। भोजन तैयार होनेपर इन्होंने भी भोजन किया और फिर परस्पर बातें होने लगीं।

हाथ जोड़े हुए निमाई पण्डितने कहा—'भगवन्! अब तो हमें बहुत दिन इस वाग्वृत्तिके जीवनको बिताते हुए हो गये, अब हमें अपने चरणोंकी शरण प्रदान कीजिये। कृपा करके थोड़ी-बहुत श्रीकृष्णभक्ति हमें भी दीजिये।'

इनकी बातका उत्तर देते हुए पुरी महाशयने कहा—'आप तो स्वयं ही श्रीकृष्ण-स्वरूप हैं, आपको भला भक्ति कौन प्रदान कर सकता है! आप स्वयं ही सम्पूर्ण संसारको प्रेम प्रदान कर सकते हैं।'

दीनताके साथ इन्होंने कहा—'प्रभो! मेरी वञ्चना न कीजिये। मेरी प्रार्थना स्वीकृत कीजिये और मुझे श्रीकृष्ण-मन्त्र प्रदान कर दीजिये।'

पुरीने सरलताके साथ कहा—'आप श्रीकृष्ण-मन्त्र प्रदान करनेको ही कहते हैं, हम आपके कहनेपर अपने प्राण प्रदान कर सकते हैं, किन्तु हममें इतनी योग्यता हो तब तो? हम स्वयं अधम हैं। प्रेमका रहस्य हम स्वयं नहीं जानते फिर आप-जैसे कुलीन और विद्वान् ब्राह्मणको हम मन्त्र-प्रदान कैसे कर सकेंगे?'

बड़ी सरलताके साथ आँखोंमें आसू भरे हुए इन्होंने उत्तर दिया—'आप सर्वसामर्थ्यवान् हैं, आप स्वयं ईश्वर हैं। आपका श्रीविग्रह ही प्रेमकी सजीव मूर्ति है। आप चाहें तो संसारभरको प्रेम-पीयूषमें प्लावित कर सकते हैं।'

कुछ विवशता दिखाते हुए पुरीने कहा—'संसारको प्रेम-पीयूषके पुण्य-पयोधिमें परिप्लावित करनेकी [illegible] ही है, किन्तु आप

अपने गुरुपदके गुरुतर गौरवका सौभाग्य मुझे ही प्रदान करना चाहते हैं, तो मैं विवश हूँ। आपकी आज्ञाको टाल ही कौन सकता है? जैसी आपकी आज्ञा होगी, उसी प्रकार मैं करनेके लिये तैयार हूँ।' इतना कहकर पुरी महाशय मन्त्र-दीक्षा देनेके लिये तैयार हो गये। उसी समय पत्रा देखकर दीक्षाकी शुभ तिथि निश्चित की गयी।

नियत तिथि आ गयी। निमाई पण्डित नवीन उल्लास और आनन्दके साथ मन्त्र-दीक्षा लेनेके लिये तैयार हो गये। इनके सभी साथियोंने उस दिन दीक्षोत्सवके उपलक्ष्यमें खूब तैयारियाँ की थीं। नियत समयपर पुरी महाशय आ गये। उनकी पद-धूलि इन्होंने मस्तकपर चढ़ायी और स्वस्त्ययनके पुण्य-श्लोक पढ़कर और भगवान्‌के मधुर-मञ्जुल नामोंका संकीर्तन करनेके अनन्तर पुरी महाशयने इनके कानमें 'गोपीजनवल्लभाय नमः' इस दशाक्षर-मन्त्रका उपदेश कर दिया। मन्त्रके श्रवणमात्रसे ही ये मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और इन्हें अपने शरीरका बिलकुल ही होश नहीं रहा।

साथियोंने भाँति-भाँतिके उपचार करके इन्हें सावधान किया। बहुत देरके अनन्तर इन्हें कुछ होश हुआ। अब तो इनकी विचित्र ही दशा हो गयी। कभी तो खूब जोरोंके साथ हँसते, कभी रोते और कभी 'हा कृष्ण! हा पिता!' ऐसा कहकर जोरोंसे रुदन करते। कभी यह कहते हुए कि 'मैं तो श्रीकृष्णके पास व्रजमें जाऊँगा' व्रजकी ओर भागते। इनके साथी इन्हें पकड़-पकड़ लाते। किन्तु ये पागलोंकी भाँति उनसे अपने शरीरको छुड़ा-छुड़ाकर भागते। कभी फिर उसी भाँति जोरोंसे प्रलाप करने लगते। रोते-रोते कहते—'प्यारे! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? मेरे कृष्ण! मुझे अपने साथ ही ले चलो।' इतना कहकर फिर जोरोंसे रोने लगते।

कभी रोते-रोते अपने विद्यार्थियों तथा साथियोंसे कहते—'भैया! तुमलोग अब अपने-अपने घर जाओ। अब हम लौटकर घर

नहीं जायँगे, हम तो अब श्रीकृष्णके पास वृन्दावनमें ही जाकर रहेंगे। हमारी माताको हमारा हाथ जोड़कर प्रणाम कहना और कह देना तेरा निमाई तो पागल हो गया है।' इनके सभी साथी इनकी ऐसी अलौकिक दशा देखकर चकित रह गये और इनका भाँति भाँतिसे प्रबोध करने लगे, किन्तु ये किसीकी मानते ही नहीं थे। इस प्रकार रुदन तथा प्रलापमें रात्रि हो गयी। सभी साथी तथा शिष्यगण सुखकी नींदमें सो गये, किन्तु इन्हें नींद कहाँ ? सुखी संसार सुखरूपी मोह-निशामें शयन कर सकता है, किन्तु जिनके हृदयमें विरह-वेदनाकी तीव्र ज्वाला उठ रही है, उनके नयनोंमें नींद कहाँ ? सबके सो जानेपर ये जल्दीसे उठ खड़े हुए और रात्रिमें ही रुदन करते हुए व्रजकी ओर दौड़े। इनके प्राण श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये छटपटा रहे थे। इन्होंने साथी तथा शिष्योंकी कुछ भी परवा न की और घोर अन्धकारमें अकेले ही अलक्षित स्थानकी ओर चल पड़े। ये थोड़ी दूर ही चले होंगे कि इन्हें मानो अपने हृदयमें एक दिव्य वाणी सुन पड़ी। इन्हें भास हुआ मानो कोई अलक्षितभावसे कह रहा है—'तुम्हारा व्रजमें जानेका अभी समय नहीं आया है, अभी कुछ काल और धैर्य धारण करो। अभी अपने सत्संगसे नवद्वीपके भक्तोंको आनन्दित करके प्रेमदान करो। योग्य समय आनेपर ही तुम व्रजमें जाना।' आकाशवाणीका आदेश पाकर ये लौटकर अपने स्थानपर आ गये और आकर अपने आसनपर पड़ गये।

नदियामें प्रत्यागमन

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥*

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

प्रेममें पागल हुए उन मतवालोंके दर्शन जिन लोगोंको स्वप्नमें भी कभी हो जाते हैं, वे संसारमें बड़भागी हैं, फिर ऐसे भक्तोंके निरन्तर सत्सङ्गका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हो सका है, उनके भाग्यकी तो भला सराहना कर ही कौन सकता है ? इसीलिये तो महाभागवत विदुरजीने भगवत्-दासोंके दासोंका दास बननेमें ही अपनेको कृतकृत्य माना है। सचमुच भगवत्-सङ्गियोंका सङ्ग बड़ा ही मधुमय, आनन्दमय और रसमय

---

* नाम-संकीर्तन करनेके कारण जिसका प्रभुके पाद-पद्मोंमें दृढ़ अनुराग उत्पन्न हो गया है, जिसका चित्त प्रेमसे द्रवीभूत हो गया है ऐसा भक्त पिशाचसे पकड़े हुएके समान अथवा पागलकी भाँति कभी तो जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़ता है, कभी दहाड़ मारकर रोता है, कभी रोते-रोते हू-हू करके चिल्लाने लगता है, कभी गाने लगता है और कभी संसारकी कुछ भी परवा न करते हुए आनन्दके उद्रेकमें नृत्य करने लगता है। (ऐसे ही भक्तोंके पाद-पद्मोंकी रजसे यह पृथ्वी पावन बनती है)

नहीं जायँगे, हम तो अब श्रीकृष्णके पास वृन्दावनमें ही जाकर रहेंगे। हमारी माताको हमारा हाथ जोड़कर प्रणाम कहना और कह देना तेरा निमाई तो पागल हो गया है।' इनके सभी साथी इनकी ऐसी अलौकिक दशा देखकर चकित रह गये और इनका भाँति-भाँतिसे प्रबोध करने लगे, किन्तु ये किसीकी मानते ही नहीं थे। इस प्रकार रुदन तथा प्रलापमें रात्रि हो गयी। सभी साथी तथा शिष्यगण सुखकी नींदमें सो गये, किन्तु इन्हें नींद कहाँ! सुखी संसार सुखरूपी मोह-निशामें शयन कर सकता है, किन्तु जिनके हृदयमें विरह-वेदनाकी तीव्र ज्वाला उठ रही है, उनके नयनोंमें नींद कहाँ? सबके सो जानेपर ये जल्दीसे उठ खड़े हुए और रात्रिमें ही रुदन करते हुए व्रजकी ओर दौड़े। इनके प्राण श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये छटपटा रहे थे। इन्होंने साथी तथा शिष्योंकी कुछ भी परवा न की और घोर अन्धकारमें अकेले ही अलक्षित स्थानकी ओर चल पड़े। ये थोड़ी दूर ही चले होंगे कि इन्हें मानो अपने हृदयमें एक दिव्य वाणी सुन पड़ी। इन्हें भास हुआ मानो कोई अलक्षितभावसे कह रहा है—'तुम्हारा व्रजमें जानेका अभी समय नहीं आया है, अभी कुछ काल और धैर्य धारण करो। अभी अपने सत्संगसे नवद्वीपके भक्तोंको आनन्दित करके प्रेमदान करो। योग्य समय आनेपर ही तुम व्रजमें जाना।' आकाशवाणीका आदेश पाकर ये लौटकर अपने स्थानपर आ गये और आकर अपने आसनपर पड़ गये।

नदियामें प्रत्यागमन

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥*
(श्रीमद्भा० ११।२।४०)

प्रेममें पागल हुए उन मतवालोंके दर्शन जिन लोगोंको स्वप्नमें भी कभी हो जाते हैं, वे संसारमें बड़भागी हैं, फिर ऐसे भक्तोंके निरन्तर सत्सङ्गका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हो सका है, उनके भाग्यकी तो भला सराहना कर ही कौन सकता है ? इसीलिये तो महाभागवत विदुरजीने भगवत्-दासोंके दासोंका दास बननेमें ही अपनेको कृतकृत्य माना है। सचमुच भगवत्-सङ्गियोंका सङ्ग बड़ा ही मधुमय, आनन्दमय और रसमय

---

* नाम-संकीर्तन करनेके कारण जिसका प्रभुके पाद-पद्मोंमें दृढ अनुराग उत्पन्न हो गया है, जिसका चित्त प्रेमसे द्रवीभूत हो गया है ऐसा भक्त पिशाचसे पकड़े हुएके समान अथवा पागलकी भाँति कभी तो जोरसे खिलखिलाकर हँस पड़ता है, कभी दहाड़ मारकर रोता है, कभी रोते-रोते हू-हू करके चिल्लाने लगता है, कभी गाने लगता है और कभी संसारकी कुछ भी परवा न करते हुए आनन्दके उद्वेगमें नृत्य करने लगता है। (ऐसे ही भक्तोंके पाद-पद्मोंकी रजसे यह पृथ्वी पावन बनती है)

होता है। उनका क्षणभरका भी संसर्ग हमें संसारसे बहुत दूर ले जाता है। उनके दर्शनमात्रसे ही आनन्द उमड़ने लगता है।

निमाई पण्डितको मन्त्र-दीक्षा देकर श्रीईश्वरपुरी किधर और कहाँ चले गये, इसका अन्ततक किसीको पता नहीं चला। उन्होंने सोचा होगा, जगत्-पूज्य प्रेमावतार लोक-शिक्षाके निमित्त गुरु मानकर हमें प्रणाम करेंगे, यह हमारे लिये असह्यनीय होगा, इसलिये अब इस संसारमें प्रकट-रूपसे नहीं रहना चाहिये। इसीलिये वे उसी समय अन्तर्धान हो गये। फिर जाकर कहाँ रहे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं।

इधर प्रातःकाल निमाई पण्डित उठे। लोगोंने देखा उनके शरीरका सारा कपड़ा आँसुओंसे भीगा हुआ है, वे क्षणभरके लिये भी रात्रिमें नहीं सोये थे। रातभर 'हा कृष्ण! मेरे प्यारे! ओः बाप! मुझे छोड़कर किधर चले गये?' इसी प्रकार विरहयुक्त वाक्योंके द्वारा रुदन करते रहे। इनकी ऐसी विचित्र अवस्था देखकर अब साथियोंने गयाजीमें अधिक ठहरना उचित नहीं समझा। इनके शिष्य इन्हें बड़ी सावधानीके साथ इनके शरीरको सम्हालते हुए नवद्वीपकी ओर ले चले। ये किसी अचैतन्य पदार्थकी भाँति शिष्योंके सहारेसे चलने लगे। शरीरका कुछ भी होश नहीं है। कभी-कभी होशमें आ जाते हैं, फिर जोरोंसे चिल्ला उठते हैं, 'हा कृष्ण! किधर चले गये? प्राणनाथ! रक्षा करो! पतितपावन! इस पापीका भी उद्धार करो!' इस प्रकार ये श्रीकृष्णप्रेममें बेसुध हुए साथियोंके सहित कुमारहट्ट नामके ग्राममें आये। जिनसे इन्होंने श्रीकृष्ण-मन्त्रकी दीक्षा ली थी, जिन्होंने इन्हें पण्डितसे पागल बना दिया था, उन्हीं श्रीईश्वरपुरीजीका जन्म स्थान इसी कुमारहट्ट नामक ग्राममें था। प्रभुने उस नगरीको दूरसे ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर साधारण लोगों-को गुरु-महिमाका महत्त्व बतानेके लिये इन्होंने उस ग्रामकी धूलि अपने

वस्त्रमें बाँध ली और साथियोंसे कहा—'इस धूलिमें कभी श्रीगुरुदेवके चरण पड़े होंगे। बाल्यकालमें हमारे गुरुदेवका श्रीविग्रह इसमें कभी लोट-पोट हुआ होगा। इसलिये यह रज हमारे लिये अत्यन्त ही पवित्र है। इससे बढ़कर त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं हो सकती। कुमारहट्टका कुत्ता भी हमारे लिये वन्दनीय है। जिस स्थानमें हमारे गुरुदेवने जन्म धारण किया है, जहाँकी पावन भूमिमें उन्होंने क्रीडा की है, वह हमारे लिये लाखों तीर्थोंसे बढ़कर है।' इस प्रकार गुरुदेवका माहात्म्य प्रदर्शन करते हुए वह आगे बढ़े और थोड़े दिनोंमें नवद्वीप पहुँच गये।

इनके गयासे लौट आनेका समाचार सुनकर सभी इष्ट-मित्र, स्नेही तथा छात्र इनके दर्शनके लिये आने लगे। कोई आकर इन्हें प्रणाम करता, कोई चरण-स्पर्श करता, कोई गले लगकर मिलता। ये भी सबका यथोचित आदर करते। किसीको पुचकारते, किसीको आशीर्वाद देते, किसीके सिरपर हाथ रख देते और जो अवस्थामे बड़े थे और इनके माननीय थे, उन्हे ये स्वयं प्रणाम करते। वे इन्हे भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देते। शचीमाता तथा विष्णुप्रियाके आनन्दका तो कुछ ठिकाना ही नहीं था। वे मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थीं। उस भारी भीड़में वे दोनों एक ओर चुपचाप बैठी थीं। सबसे मिल लेनेपर इन्होंने प्रेमपूर्वक सभीको विदा किया और स्वयं स्नानादिमें लग गये। इनका भाव विचित्र था, शरीरकी दशा एकदम परिवर्तित हो गयी थी। माताको इनकी ऐसी दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु वे कुछ पूछ न सकीं।

तीसरे पहर जब ये स्वस्थ होकर बैठे तब श्रीमान् पण्डित सदाशिव कविराज, मुरारी गुप्त आदि इनके अन्तरङ्ग स्नेही इनके समीप आकर गया-यात्राका वृत्तान्त पूछने लगे। सबकी जिज्ञासा देखकर इन्होंने कहना प्रारम्भ किया—'पुरीकी यात्राका क्या वर्णन करूँ? मैं तो पागल हो गया।

जिस समय पादपद्मोंका माहात्म्य मेरे कानोंमें पड़ा, जब मैंने सुना कि प्रभुके पादपद्म सभी प्रकारके प्राणियोंको पावन और प्रेममय बनानेवाले हैं, पापी-से-पापी प्राणी भी इन पादपद्मोंका सहारा पाकर अपार संसारसागरसे सहजमें ही तर जाता है, जिन पादपद्मोंके प्रक्षालित पयसे त्रिलोकपावनी भगवती भागीरथी निकली हैं, उन पादपद्मोंके दर्शन करनेसे किसे परमशान्ति न मिल सकेगी ?' इतना सुनते ही मैं बेहोश हो गया।

प्रभु अन्तिम शब्दोंको ठीक-ठीक कह भी न पाये थे कि वे बीचमें ही बेहोश होकर गिर पड़े। लोगोंको इनकी ऐसी दशा देखकर महान् आश्चर्य हुआ। सभी भौंचके-से एक दूसरेकी ओर देखने लगे। तीन महीने पहिले उन्होंने जिस निमाईको देखा था, आज उसे इस प्रकार प्रेममें विह्वल देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। निमाई लम्बी-लम्बी साँसें ले रहे थे। उनकी आँखोंमेंसे निरन्तर अश्रु निकल रहे थे, शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था। थोड़ी देरमें वे 'हा कृष्ण! हा प्राणनाथ! प्यारे! ओ मेरे प्यारे! मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?' यह कहते-कहते बहुत जोरोंके साथ रुदन करने लगे। सभीने शान्त करनेकी चेष्टा की, किन्तु परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। इन्होंने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—'आज हमारी प्रकृति स्वस्थ नहीं है। कल हम स्वयं शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके निवासस्थानपर आकर अपनी यात्राका समाचार सुनायेंगे।' इतना सुनकर इनके सभी साथी अपने-अपने स्थानोंके लिये चले गये।

अब तो इनके इस अद्भुत नूतन भावकी नवद्वीपमें स्थान-स्थानपर चर्चा होने लगी। हँसते-हँसते श्रीमान् पण्डितने श्रीवास आदि भक्तोंसे कहा—'आज हम आपलोगोंको बड़ी ही प्रसन्नताकी बात सुनाना चाहते हैं, आपलोग सभी सुनकर परम आश्चर्य करेंगे। गयामें जाकर निमाई पण्डितकी तो काया-पलट ही हो गयी। वे श्रीकृष्ण प्रेममें विह्वल होकर कभी

रोते हैं, कभी गाते हैं, कभी हँसते हैं और कभी-कभी जोरोंसे नृत्य करने लगते हैं। उनके जीवनमें महान् परिवर्तन हो गया है। आजतक किसीको स्वप्नमें भी ऐसी आशा नहीं थी कि उनका जीवन इस प्रकार एक साथ ही इतना पलटा खा जायगा।'

परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीवास पण्डितने कहा—'सचमुच ऐसी बात है! तब तो फिर वैष्णवोंके भाग्य ही खुल गये। वैष्णवोंका एक प्रधान आश्रय हो गया। निमाई पण्डितके वैष्णव हो जानेपर भक्ति फिरसे सनाथ हो गयी। आप हँसी तो नहीं कर रहे हैं? क्या यथार्थमें ऐसी बात है?'

जोर देकर श्रीमान् पण्डितने कहा—'मैं शपथपूर्वक कहता हूँ, हँसीका क्या काम! आप स्वयं जाकर देख आइये, वे तो बालकोंकी भाँति फूट-फूटकर रुदन कर रहे हैं। कल सदाशिव, मुरारी आदि सभी लोगोंको शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके स्थानपर बुलाया है, वहाँ अपनी यात्राका समस्त वृत्तान्त सुनावेंगे।' इस बातको सुनकर श्रीवास आदि सभी भक्तोंको परम सन्तोष हुआ। किन्तु गदाधर पण्डितको अब भी कुछ सन्देह ही बना रहा। उन्होंने निश्चय किया कि ब्रह्मचारीके घरमें छिपकर सब बातें सुनूँगा, देखें उन्हें यथार्थमें श्रीकृष्ण-प्रेम उत्पन्न हुआ है या नहीं। यह सोचकर वे दूसरे दिन नियत समयके पूर्व ही शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके घरमें जा छिपे।

नियत समयपर सदाशिव पण्डित, मुरारी गुप्त, नीलाम्बर चक्रवर्ती तथा श्रीमान् पण्डित आदि सभी मुख्य-मुख्य गण्य-मान्य भद्रपुरुष प्रभुकी यात्राका समाचार सुनने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके स्थानपर गङ्गातीर आ पहुँचे। थोड़ी देरमें प्रभु भी आ पहुँचे। आते ही इन्होंने वही राग अलापना आरम्भ कर दिया। कहने लगे—'भैया! मुझे श्रीकृष्णसे मिला दो,

सभी प्रेमावेशमें आकर रुदन करने लगे। सभी अपने आपेको भूल गये। इस प्रकार रुदन और विलाप करते हुए शाम हो गयी और सभी अपने-अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन स्वस्थ होकर महाप्रभु अपने विद्या-गुरु श्रीगंगादास पण्डित-के घर गये और उन्हें प्रणाम करके बैठ गये। गंगादासजीने इनका आलिङ्गन किया और यात्राका सभी वृत्तान्त पूछा। वे कहने लगे—'तुमने तो तीन-चार महीने लगा दिये। तुम्हारे सभी विद्यार्थी अत्यन्त दुखी थे, उन्हें तुम्हारे पाठके अतिरिक्त किसी पण्डितका पाठ अच्छा ही नहीं लगता है। इसीलिये वे लोग तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे। अच्छा हुआ अब तुम आ गये। अब तो पढ़ाओगे न?'

मेरा प्यारा कृष्ण कहाँ चला गया ? हाय रे ! मेरा दुर्भाग्य ! मेरा श्रीकृष्ण मुझसे बिछुड़ गया ! मुझे बिलखता ही छोड़ गया ।' इतना कहते-कहते ये मूर्छित होकर गिर पड़े । इनकी ऐसी दशा देखकर भीतर घरमें छिपे हुए गदाधर भी प्रेममें विह्वल होकर मूर्च्छा आनेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े और जोरोंसे रुदन करने लगे । कुछ कालके अनन्तर प्रभुकी मूर्च्छा भंग हुई । वे कुछ कालके लिये प्रकृतिस्थ हुए, किन्तु फिर भारी वेदना उठनेके कारण जोरोंसे चीत्कार मारकर रुदन करने लगे । इनके रुदनको देखकर वहाँ जितने भी मनुष्य बैठे थे, सभी फूट-फूटकर रोने लगे । सबके रुदनसे आकाश गूँजने लगा । क्रन्दनकी ध्वनिसे आकाशमण्डल भर गया । बहुत-से दर्शनार्थी आ-आकर खड़े हो गये । उनकी आँखोंमेंसे भी अश्रु बहने लगे । इस प्रकार शुक्लाम्बरका घर रुदनके कारण कोलाहलपूर्ण हो गया ।

कुछ कालके अनन्तर फिर प्रभु सुस्थिर हुए । उन्हें कुछ-कुछ बाह्यज्ञान होने लगा । स्थिर होनेपर प्रभुने शुक्लाम्बरजीसे पूछा—'ब्रह्मचारीजी ! घरके भीतर कौन है ?'

प्रेमके साथ ब्रह्मचारीजीने कहा—'आपका गदाधर है ।' 'गदाधर' इतना सुनते ही वे फिर फूट-फूटकर रोने लगे । रोते-रोते कहने लगे—'गदाधर ! भैया ! तुम ही धन्य हो । मनुष्यजन्मका यथार्थ फल तो तुमने ही प्राप्त किया है, हम तो वैसे ही रह गये । हमारी तो आयु वैसे ही बरबाद हुई ।' इतना कहकर फिर वही 'हा कृष्ण ! हा अशरणशरण ! हा पतितपावन ! कहाँ चले गये ।' फिर अधीर होकर लोगोंके पैरोंपर अपना सिर रख-रखकर कहने लगे—'भैया ! मुझ दुखियाके ऊपर दया करो ! मेरे दुःखको दूर करो । मुझे श्रीकृष्णसे मिला दो । मेरे प्राण उन्हींसे मिलने-के लिये तड़प रहे हैं ।'

प्रभुके इन दीनताभरे वाक्योंको सुनकर सभीका हृदय फटने लगा ।

सभी प्रेमावेशमें आकर रुदन करने लगे। सभी अपने आपेको भूल गये। इस प्रकार रुदन और विलाप करते हुए शाम हो गयी और सभी अपने-अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन स्वस्थ होकर महाप्रभु अपने विद्या-गुरु श्रीगंगादास पण्डित-के घर गये और उन्हें प्रणाम करके बैठ गये। गंगादासजीने इनका आलिङ्गन किया और यात्राका सभी वृत्तान्त पूछा। वे कहने लगे—'तुमने तो तीन-चार महीने लगा दिये। तुम्हारे सभी विद्यार्थी अत्यन्त दुखी थे, उन्हें तुम्हारे पाठके अतिरिक्त किसी पण्डितका पाठ अच्छा ही नहीं लगता है। इसीलिये वे लोग तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे। अच्छा हुआ अब तुम आ गये। अब तो पढ़ाओगे न?'

महाप्रभुने कहा—'हाँ, प्रयत्न करूँगा, श्रीकृष्ण कृपा करेंगे तो सब कुछ होगा। सब उन्हींके ऊपर निर्भर है।' इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर फिर आप मुकुन्द संजयके चण्डीमण्डपमें, जहाँ आपकी पाठशाला थी, वहाँ आये। संजय महाशय बड़े ही आनन्दके साथ प्रभुसे मिले। उनके पुत्र पुरुषोत्तम संजयने प्रभुके पादपद्मोंमें श्रद्धाभक्तिके साथ प्रणाम किया। प्रभुने उसे आलिङ्गन किया। इस प्रकार दोनों पिता-पुत्र प्रभुके दर्शनोंसे परम प्रसन्न हुए।

स्त्रियोंने जब प्रभुके आगमनके समाचार सुने तो वे बड़ी ही आनन्दित हुईं और परस्परमें भाँति-भाँतिकी बातें कहने लगीं। कोई कहती—'अब तो निमाई पण्डित एकदम बदल आये।' कोई कहती—'बड़े भाग्यसे भगवत्-भक्ति प्राप्त होती है। यह सौभाग्यकी बात है कि निमाई-जैसे पण्डित परम भागवत वैष्णव बन गये।' इस प्रकार सभी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुरूप भाँति-भाँतिकी बातें कहने लगीं। सबसे मिल-जुलकर निमाई घर लौट आये।

वही प्रेमोन्माद

यदाग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ॥*

(श्रीमद्भा० ११)

जिसके हृदयमें भगवत्प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे फिर अन्य संसारी

---

* प्रेमी भक्त प्रेमके भावावेशमें पिशाचसे पकड़े जानेवाले मनुष्यके समान कभी तो खिलखिलाकर हँस पड़ता है, कभी जोरोंसे चीत्कार करने लगता है, कभी भगवान्‌की मञ्जुल मूर्तिका ध्यान करने लगता है, कभी लोगोंके चरण पकड़-पकड़कर उनकी वन्दना करता है, फिर बार-बार लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगता है और लोकलज्जाकी कुछ भी परवा न करता हुआ जोरोंसे हे हरे ! हे जगत्पते ! हे नारायण ! इस प्रकार उच्चारण करने लगता है ।

बातें भली ही किस प्रकार लग सकती हैं ? जिसकी जिह्वाने मिश्रीका रसास्वाद कर लिया फिर वह गुड़के मैलको आनन्द और उल्लासके साथ स्वेच्छासे कब पसंद कर सकती है ? स्थायी प्रेम प्राप्त होनेपर तो मनुष्य सचमुच पागल बन जाता है, फिर उसे इस बाह्य संसारका होश ही नहीं रहता। जिन्हें किन्हीं महापुरुषकी कृपासे या किसी पुण्य-स्थानके प्रभावसे क्षण-भरके लिये प्रेमावेश हो जाता है, वह तो वास्तवमें प्रेमकी झलक है। जैसे पर्वतके शिखरके ऊपरके बने हुए मन्दिरकी किञ्चिन्मात्र धुँधली सी चोटी देखकर सैकड़ों कोस दूरसे ही कोई पथिक आनन्दमें उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे कि हम तो अपने गन्तव्य स्थानतक पहुँच गये। यही दशा उस क्षणिक प्रेमीकी है। वास्तवमें अभी वह सच्चे प्रेमसे बहुत दूर है। प्रेममार्गमें यथार्थ रीतिसे प्रवेश हो जानेपर तो उसकी वृत्ति संसारी विषयोंमें प्रवेश कर ही नहीं सकती। वह तो सदा प्रेम-मदमें उन्मत्त-सा ही बना रहेगा। वह न तो क्षणभरमें ऊपर ही चढ़ जायगा और न दूसरे ही क्षणमें नीचे गिर जायगा। उसकी स्थिति तो सदा एक-सी बनी रहेगी। कबीरदासजी कहते हैं—

छनहिं चढ़ै छन उतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

वास्तवमें प्रेमीकी स्थिति तो सदा एक ही रस रहती है, उसे प्रतिक्षण अपने प्रियतमसे मिलनेकी छटपटाहट होती रहती है। वह सदा अतृप्त ही बना रहता है। प्यारेके सिवा उसका दूसरा कोई है ही नहीं। उसका प्रियतम उसे चाहता है या नहीं इसकी उसे परवा नहीं। इस बातका वह स्वप्नमें भी ध्यान नहीं करता। वह तो अपने प्यारेको ही सर्वस्व समझकर उसकी स्मृतिमें सदा अधीर-सा बना रहता है। रसिक रसखानने प्रेमके स्वरूपका क्या ही सुन्दर वर्णन किया है—

इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनैं प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

मुझे इच्छा नहीं। मेरा प्यारा, मेरे जीवनका सहारा, मेरी आँखोंका तारा यह निमाई स्वच्छ और नीरोग बना रहे, यही मेरी प्रार्थना है।' माता बार-बार 'निमाई'के मुखकी ओर देखतीं और उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर अत्यन्त ही दुखी होतीं।

महाप्रभु अब जो भी काम करना चाहते, उसे ही नहीं कर सकते। काम करते-करते उन्हें अपने प्रियतमकी याद आ जाती और उसीके विरहमें बेहोश होकर गिर पड़ते। ठीक-ठीक भोजन भी नहीं कर सकते। स्नान, सन्ध्या, पूजाका उन्हें कुछ भी होश नहीं, मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णके मधुर नामोंका ही अपने-आप उच्चारण होता रहता है। किसीकी बातका उत्तर भी देते हैं तो उसमें भी भगवान्‌की अलौकिक लीलाओंका ही वर्णन होता है। किसीसे बातें भी करते हैं, तो श्रीकृष्णके ही सम्बन्धकी करते हैं। अर्थात् वे श्रीकृष्णके सिवा कुछ जानते ही नहीं हैं। श्रीकृष्ण ही उनके प्राण हैं, श्रीकृष्ण ही उनके धन हैं, अर्थात् उनके सर्वस्व श्रीकृष्ण ही हैं, उनके लिये संसारमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

प्रभुके सब विद्यार्थियोंने जब सुना कि गुरुजी गयाधामकी यात्रा करके लौट आये हैं, तो वे एक-एक करके उनके घरपर आने लगे और पाठशालामें चलकर पढ़ानेकी प्रार्थना करने लगे। सबके बहुत आग्रह करनेपर प्रभु पाठशालामें पढ़ानेके निमित्त गये। किन्तु वे पढ़ावें क्या, लौकिक शास्त्रोंको तो वे एकदम भूल ही गये, अब वे श्रीकृष्ण-कीर्तनके अतिरिक्त किसी भी विषयको नहीं कह सकते। उसी पाठको विद्यार्थियोंके लिये पढ़ाने लगे—'भैया! इन संसारी शास्त्रोंमें क्या रखा है? श्रीकृष्णका नाम ही एकमात्र सार है, वह मधुरातिमधुर है। उसीका पान करो, इन लौकिक शास्त्रोंसे क्या अभीष्ट सिद्ध होगा? प्राणिमात्रके आश्रय-स्थान श्रीकृष्ण ही हैं। संसारकी सृष्टि, स्थिति और लय उन ही श्रीकृष्णकी इच्छामात्रसे होता रहता है। वे आनन्दके धाम हैं, सुखस्वरूप हैं। उनके

महाप्रभु चैतन्यदेवका प्रेम ऐसा ही था। उनकी हृदय-कन्दरासे जो भक्ति-भावका भव्य स्रोत उदित हो गया, वह फिर सदा उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उनकी हृदय कन्दरासे उत्पन्न हुई भक्ति-भागीरथीकी धारा सावन-भादोंकी क्षुद्र नदीकी भाँति नहीं थी जो थोड़े समयके लिये तो खूब इठलाकर चलती है और जेठ-मासकी तेज धूप पड़ते ही सूख जाती है। उनके हृदयसे उत्पन्न हुई प्रेम-सरिताकी धारा सदा बहकर समुद्रमें ही जाकर मिलनेवाली स्थायी थी। उसमें कमीका क्या काम! वह तो उत्तरोत्तर बढ़नेवाली अलौकिक और अनुपम धारा थी, उसकी उपमा इन संसारी धाराओंसे दी ही नहीं जा सकती। वह तो अनुभव-गम्य ही है।

महाप्रभु जबसे गयासे लौटकर आये हैं, तभीसे उनकी विचित्र दशा है। वे भोजन करते-करते सहसा बीचमें ही उठकर रुदन करने लगते हैं, रास्ता चलते-चलते पागलोंकी भाँति नृत्य करने लगते हैं। शय्यापर लेटे-लेटे सहसा उठकर बैठ जाते हैं और 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!' कहकर जोरोंसे चिल्लाने लगते हैं। कभी-कभी लोगोंसे बातें करते-करते बीचमें ही जोरोंसे ठहाका मारकर हँसने लगते हैं। रातभर सोनेका नाम नहीं। लम्बी-लम्बी साँसें लेते रहते हैं, अधीर होकर अत्यन्त विरहीकी भाँति हिचकियाँ भरते रहते हैं और उनके नेत्रोंसे इतना जल निकलता है कि सम्पूर्ण वस्त्र गीले हो जाते हैं। विष्णुप्रिया इनकी ऐसी दशा देखकर भयभीत हो जाती हैं और जाकर अपनी साससे सभी बातोंको कहती हैं। शचीमाता पुत्रकी दशा देखकर दुःखसे कातर होकर रुदन करने लगती हैं और सभी देवी-देवताओंकी मनौती मानती हैं। वे करुणभावसे अधीर होकर प्रभुके पादपद्मोंमें प्रार्थना करती हैं—'हे अशरण-शरण! इस दीन-हीन कंगालिनी विधवाके एकमात्र पुत्रके ऊपर कृपा करो'। दयालो! मैं धन नहीं चाहती, भोग नहीं चाहती, सुन्दर वस्त्राभूषण तथा सुस्वादु भोजनकी

मुझे इच्छा नहीं। मेरा प्यारा, मेरे जीवनका सहारा, मेरी आँखोंका तारा यह निमाई स्वच्छ और नीरोग बना रहे, यही मेरी प्रार्थना है।' माता बार-बार 'निमाईके मुखकी ओर देखतीं और उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर अत्यन्त ही दुखी होतीं।

महाप्रभु अब जो भी काम करना चाहते, उसे ही नहीं कर सकते। काम करते-करते उन्हें अपने प्रियतमकी याद आ जाती और उसीके विरहमें बेहोश होकर गिर पड़ते। ठीक-ठीक भोजन भी नहीं कर सकते। स्नान, सन्ध्या, पूजाका उन्हें कुछ भी होश नहीं, मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णके मधुर नामोंका ही अपने-आप उच्चारण होता रहता है। किसीकी बातका उत्तर भी देते हैं तो उसमें भी भगवान्‌की अलौकिक लीलाओंका ही वर्णन होता है। किसीसे बातें भी करते हैं, तो श्रीकृष्णके ही सम्बन्धकी करते हैं। अर्थात् वे श्रीकृष्णके सिवा कुछ जानते ही नहीं हैं। श्रीकृष्ण ही उनके प्राण हैं, श्रीकृष्ण ही उनके धन हैं, अर्थात् उनके सर्वस्व श्रीकृष्ण ही हैं, उनके लिये संसारमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

प्रभुके सब विद्यार्थियोंने जब सुना कि गुरुजी गयाधामकी यात्रा करके लौट आये हैं, तो वे एक-एक करके उनके घरपर आने लगे और पाठशालामें चलकर पढ़ानेकी प्रार्थना करने लगे। सबके बहुत आग्रह करनेपर प्रभु पाठशालामें पढ़ानेके निमित्त गये। किन्तु वे पढ़ावें क्या, लौकिक शास्त्रोंको तो वे एकदम भूल ही गये, अब वे श्रीकृष्ण-कीर्तनके अतिरिक्त किसी भी विषयको नहीं कह सकते। उसी पाठको विद्यार्थियोंके लिये पढ़ाने लगे—'भैया! इन संसारी शास्त्रोंमें क्या रखा है? श्रीकृष्णका नाम ही एकमात्र सार है, वह मधुरातिमधुर है। उसीका पान करो, इन लौकिक शास्त्रोंसे क्या अभीष्ट सिद्ध होगा? प्राणिमात्रके आश्रय-स्थान श्रीकृष्ण ही हैं। संसारकी सृष्टि, स्थिति और लय उन ही श्रीकृष्णकी इच्छामात्रसे होता रहता है। वे आनन्दके धाम हैं, सुखस्वरूप हैं। उनके

गुणोंका आर्त होकर गान करते रहना मनुष्योंका परम पुरुषार्थ है।' इतना कहते-कहते प्रभु उच्च स्वरसे कृष्ण-कीर्तन करने लगे।

इन बातोंको श्रवण करके कुछ विद्यार्थी तो आनन्द-सागरमें मग्न हो गये। वे तो बाह्यज्ञान-शून्य होकर परमानन्दका अनुभव करने लगे। कुछ ऐसे भी थे, जो पुस्तकी विद्याको ही सर्वस्व समझते थे। भट्टाचार्य और शास्त्री बनना ही जिनके जीवनका एकमात्र चरम लक्ष्य था, वे कहने लगे—'गुरुजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं? हमें इन बातोंसे क्या प्रयोजन? इन बातोंका विचार तो वैष्णव भक्त करें। हमें तो हमारी पाठ्य पुस्तकका पाठ पढ़ाइये। हम यहाँ पाठशालामें भक्ति-तत्त्वकी शिक्षा लेनेके लिये नहीं आये हैं, हमें तो व्याकरण, अलंकार तथा न्याय आदि पुस्तकोंके पाठोंको पढ़ाइये।'

उन विद्यार्थियोंकी ऐसी बातें सुनकर प्रभुने कहा—'भाई! आज हमारी प्रकृति स्वस्थ नहीं है। आज आपलोग अपना-अपना पाठ बंद रखिये, पुस्तकोंको बाँधकर रख दीजिये। चलो, अब गङ्गा-स्नान करने चलें। कल पाठकी बात देखी जायगी।' इतना सुनते ही सभी विद्यार्थियोंने अपनी-अपनी पुस्तकें बाँध दीं और वे प्रभुके साथ गङ्गा-स्नानके निमित्त चल दिये। गङ्गाजीपर पहुँचकर बहुत देरतक जल-विहार होता रहा। रात्रि हो जानेपर प्रभु लौटकर घर आये और विद्यार्थी अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

दूसरे दिन महाप्रभु फिर पाठशालामें पहुँचे। प्रभुके आसनासीन हो जानेपर विद्यार्थियोंने अपनी-अपनी पुस्तकोंमेंसे प्रश्न पूछना आरम्भ कर दिया। कोई भी विद्यार्थी इनसे कैसा भी प्रश्न पूछता उसका ये श्रीकृष्णपरक ही उत्तर देते।

कोई विद्यार्थी पूछता—'सिद्धवर्णसमाम्नाय बताइये?'

गुणोंका आर्त होकर गान करते रहना मनुष्योंका परम पुरुषार्थ है इतना कहते-कहते प्रभु उच्च स्वरसे कृष्ण-कीर्तन करने लगे।

इन बातोंको श्रवण करके कुछ विद्यार्थी तो आनन्द-सागरमें मग्न हो गये। वे तो बाह्यज्ञान-शून्य होकर परमानन्दका अनुभव करने लगे कुछ ऐसे भी थे, जो पुस्तकी विद्याको ही सर्वस्व समझते थे। भट्टाचार्य और शास्त्री बनना ही जिनके जीवनका एकमात्र चरम लक्ष्य था, वे कहने लगे—'गुरुजी! आप कैसी बातें कर रहे हैं? हमें इन बातोंसे क्या प्रयोजन? इन बातोंका विचार तो वैष्णव भक्त करें। हमें तो हमारी पाठ्य पुस्तकका पाठ पढ़ाइये। हम यहाँ पाठशालामें भक्ति-तत्त्वकी शिक्षा लेनेके लिये नहीं आये हैं, हमें तो व्याकरण, अलंकार तथा न्याय आदि पुस्तकोंके पाठोंको पढ़ाइये।'

उन विद्यार्थियोंकी ऐसी बातें सुनकर प्रभुने कहा—'भाई! आज हमारी प्रकृति स्वस्थ नहीं है। आज आपलोग अपना-अपना पाठ बंद रखिये, पुस्तकोंको बाँधकर रख दीजिये। चलो, अब गङ्गा-स्नान करने चलें। कल पाठकी बात देखी जायगी।' इतना सुनते ही सभी विद्यार्थियोंने अपनी-अपनी पुस्तकें बाँध दीं और वे प्रभुके साथ गङ्गा-स्नानके निमित्त चल दिये। गङ्गाजीपर पहुँचकर बहुत देरतक जल-विहार होता रहा। रात्रि हो जानेपर प्रभु लौटकर घर आये और विद्यार्थी अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

दूसरे दिन महाप्रभु फिर पाठशालामें पहुँचे। प्रभुके आसनासीन हो जानेपर विद्यार्थियोंने अपनी-अपनी पुस्तकोंमेंसे प्रश्न पूछना आरम्भ कर दिया। कोई भी विद्यार्थी इनसे कैसा भी प्रश्न पूछता उसका ये श्रीकृष्णपरक ही उत्तर देते।

कोई विद्यार्थी पूछा—'सिद्धवर्णसमाम्नाय बताइये?'

आप उत्तर देते—'नारायण ही सब वर्णोंमें सिद्ध वर्ण हैं।'

कोई पूछता—'वर्णोंकी सिद्धि किस प्रकारसे होती है?'

प्रभु उत्तर देते—'श्रीकृष्णकी दृष्टिमात्रसे ही सब वर्ण सिद्ध हो जाते हैं।'

ऐसा उत्तर सुनकर कोई-कोई विद्यार्थी कहता—'ये भक्तिभावकी बातें छोड़िये। जो ठीक बात हो उसे ही बताइये।'

प्रभु कहते—'ठीक बात तो यही है, प्रतिक्षण श्रीकृष्ण-नामका ही संकीर्तन करते रहना चाहिये।'

यह सुनकर सभी विद्यार्थी एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगते। कोई तो चकित होकर प्रभुके श्रीमुखकी ओर देखने लगता। कोई-कोई धीरेसे कह देता 'दिमागमें गर्मी चढ गयी है।' दूसरा उसे धीरेसे धक्का देकर ऐसा कहनेके लिये निषेध करता।

प्रभुकी ऐसी अद्भुत व्याख्याएँ सुनकर बड़े-बड़े विद्यार्थी कहने लगे—'आप ये तो न जाने कहाँकी व्याख्या कर रहे हैं, शास्त्रीय व्याख्या कीजिये।'

प्रभु इसका उत्तर देते—'मैं शास्त्रोंका सार ही बता रहा हूँ। किसी भी पण्डितसे जाकर पूछ आओ, वह सर्वशास्त्रोंका सार श्रीकृष्ण-पद-प्राप्ति ही बतायेगा।'

विद्यार्थी बेचारे इनकी अलौकिक बातोंका उत्तर दे ही क्या सकते थे! सब अपनी-अपनी पुस्तकें बाँधकर अपने-अपने स्थानके लिये चले गये। कुछ समझदार और बड़े छात्र पण्डित गंगादासजीकी सेवामें पहुँचे।

वे प्रणाम करके उनके समीप बैठ गये। कुशल-प्रश्नके अनन्तर आचार्य गंगादासने उनके आनेका कारण पूछा। दुखी होकर उन लोगोंने कहा—'महाराजजी! हम क्या बतावें, हमारे गुरुजी जबसे गयासे लौटे हैं, तभीसे उनकी विचित्र दशा है। वे कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं।

पाठशालामें आते तो पाठ पढ़ानेके लिये हैं, किन्तु पाठ न पढ़ाकर भक्ति-तत्व-का ही उपदेश देने लगते हैं। हमलोग व्याकरण, न्याय, अलंकार तथा साहित्य आदि किसी भी शास्त्रका प्रश्न करते हैं, तो वे उसका कृष्णपरक ही उत्तर देते हैं। उनसे जो भी प्रश्न किया जाय उसीका उत्तर ऐसा देते हैं जो पाठ्य पुस्तकके एकदम विरुद्ध है। कभी-कभी पढ़ाते-पढ़ाते रोने लगते हैं और कभी-कभी जोरसे 'हा कृष्ण! हा प्यारे! प्राणवल्लभ! पाहि माम्, राधावल्लभ! रक्ष माम्' इन वाक्योंको कहने लगते हैं। अब आप ही बताइये, इस प्रकार हमारी पढ़ाई कैसे होगी? हमलोग घर-बार छोड़कर केवल विद्याध्ययनके ही निमित्त यहाँ पड़े हुए हैं, यहाँपर हमारी पढ़ाई-लिखाई कुछ होती नहीं। उलटे पढ़े-लिखेको भूले जाते हैं। वे आपके शिष्य हैं, आप उन्हें बुलाकर समझा दें।'

पं० गंगादासजी वैसे तो बड़े भारी नामी विद्वान् थे, किन्तु उनकी विद्या पुस्तकी ही विद्या थी। भक्ति-भावसे वे एकदम कोरे थे। ईश्वरके प्रति उनका उदासीन भाव था। 'यदि ईश्वर होगा भी तो हुआ करे हमें उससे क्या काम, समयपर भोजन कर लिया, विद्यार्थियोंको पाठ पढ़ा दिया। बस, यही हमारे जीवनका व्यापार है। इसमें ईश्वरकी कुछ जरूरत ही नहीं।' कुछ-कुछ इसी प्रकारके उनके विचार थे। महाप्रभुके भक्त हो जानेकी बात सुनकर वे ठहाका मारकर हँसने लगे और विद्यार्थियोंसे कहने लगे—'हाँ, सुना तो मैंने भी है कि निमाई अब भक्त बन आया है। पण्डित होकर उसपर यह क्या भूत सवार हो गया—यह तो अनपढ़ मूर्खोंका काम है। ब्राह्मण पण्डितको तो निरन्तर शास्त्रोंके अध्ययन-अध्यापनमें ही लगे रहना चाहिये। खैर, अब तुमलोग अपने-अपने स्थानोंको जाओ। कल उसे मेरे पास भेज देना, मैं उसे समझा दूँगा। मेरी बातको वह कभी नहीं टालता है।' इतना सुनकर विद्यार्थी अपने-अपने स्थानोंपर चले गये।

दूसरे दिन प्रभुसे विद्यार्थियोंने कहा—'आचार्यजीने आज आपको

अपने यहाँ बुलाया है, आगे आपकी इच्छा है, आज जाइये या फिर किसी दिन हो आइये।' आचार्य गंगादासजीका बुलावा सुनकर प्रभु उसी समय दो-चार विद्यार्थियोंको साथ लेकर उनके स्थानपर पहुँचे। वहाँ जाकर प्रभुने अपने विद्यागुरुके चरणोंकी वन्दना की, गंगादासजीने भी उनका पुत्रकी भाँति आलिङ्गन किया और बैठनेके लिये एक आसनकी ओर संकेत किया। आचार्यकी आज्ञा पाकर उनके बताये हुए आसनपर प्रभु बैठ गये। प्रभुके बैठ जानेपर साथके विद्यार्थी भी पीछे एक ओर हटकर पाठशालाकी बिछी हुई चटाइयोंपर बैठ गये।

प्रभुके सुखपूर्वक बैठ जानेपर वात्सल्य-प्रेम प्रकट करते हुए आचार्य गंगादासजीने कहा—'निमाई! तुम मेरे प्रिय विद्यार्थी हो, मैं तुम्हें पुत्रकी भाँति प्यार करता हूँ। शास्त्रोंमें कहा है, अपने प्यारेकी उसके मुखपर बड़ाई न करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उसकी आयु क्षीण होती है, किन्तु यथार्थ बात तो कही ही जाती है। तुमने मेरी पाठशालाके नामको सार्थक बना दिया है, तुम-जैसे योग्य विद्यार्थीको विद्या पढ़ाकर मेरा इतने दिनोंका परिश्रमसे पढ़ाना सफल हो गया। तुमने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य-द्वारा मेरे मुखको उज्ज्वल कर दिया। मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ।'

आचार्यके मुखसे अपनी इतनी प्रशंसा सुनकर प्रभु लज्जितभावसे नीचेकी ओर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे, उन्होंने इन बातोंका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

आचार्य गंगादासजी फिर कहने लगे—'योग्य बननेके अनन्तर तुम अध्यापक हुए और तुमने अध्यापन-कार्यमें भी यथेष्ट ख्याति प्राप्त की। तुम्हारे सभी विद्यार्थी सदा तुम्हारे शील-स्वभावकी तथा पढ़ानेकी सरल और

सुन्दर प्रणालीकी प्रशंसा करते रहते हैं, वे लोग तुम्हारे सिवा दूसरे किसीके पास पढ़ना पसंद ही नहीं करते। किन्तु कल उन्होंने आकर मुझसे तुम्हारी शिकायत की है। तुम उन्हें अब मनोयोगके साथ ठीक-ठीक नहीं पढ़ाते हो। और लोगोंने भी मुझसे आकर कहा है कि तुम अनपढ़ मूर्ख भक्तोंकी भाँति रोते-गाते तथा हँसते-कूदते हो, एक इतने भारी अध्यापकको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं! तुम विद्वान् हो, समझदार हो, मेधावी हो। शास्त्रज्ञ होकर मूर्खोंके कामोंकी नकल क्यों करने लगे हो? ऐसे ढोंग तो वे ही लोग बनाते हैं, जो शास्त्रोंकी बातें तो जानते नहीं, विद्या-बुद्धिसे तो हीन हैं, किन्तु मूर्खोंमें अपनेको पुजवाना चाहते हैं, वे ही ऐसे ढोंग रचा करते हैं। तुम्हें इसकी क्या जरूरत है? तुम तो स्वयं विद्वान् हो, बड़े-बड़े लोग तुम्हारी विद्या-बुद्धिपर ही मुग्ध होकर मुक्तकण्ठसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं और सर्वत्र तुम्हारी प्रतिष्ठा करते हैं, फिर तुम ऐसे अशास्त्रीय आचरणोंको क्यों करते हो? ठीक-ठीक बताओ क्या बात है?"

ये सब बातें सुनकर भी प्रभु चुप ही रहे, उन्होंने किसी भी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

गंगादासजीने अपना व्याख्यान समाप्त नहीं किया। वे फिर कहने लगे—"तुम्हारे नाना नीलाम्बर चक्रवर्ती एक नामी पण्डित हैं। तुम्हारे पूज्य पिता भी प्रतिष्ठित पण्डित थे, तुम्हारे मातृकुल तथा पितृकुलमें सनातनसे पाण्डित्य चला आया है, तुम स्वयं भारी विद्वान् हो, तुम्हारी विद्या-बुद्धिसे ही मुग्ध होकर सनातन मिश्र-जैसे राजपण्डितने अपनी पुत्रीका तुम्हारे साथ विवाह किया है। नवद्वीपकी विद्वन्मण्डली तुम्हारा यथेष्ट सम्मान करती है, विद्यार्थियोंको तुम्हारे प्रति पूर्ण सम्मानके भाव हैं, फिर

तुम मूर्खोंके चक्करमें कैसे आ गये ? देखो बेटा ! अध्यापकका पद पूर्व-जन्मके बहुत बड़े भाग्योंसे मिलता है। तुम उसके काममें असावधानी करते हो, यह ठीक नहीं है। बोलो, उत्तर क्यों नहीं देते ? अब अच्छी तरहसे पढ़ाया करोगे ?'

नम्रताके साथ महाप्रभुने कहा—'आपकी आज्ञा पालन करनेकी भरसक चेष्टा करूँगा। क्या करूँ, मेरा मन मेरे वशमें नहीं है। कहना चाहता हूँ कुछ और मुँहसे निकल जाता है कुछ और ही !'

गंगादासजीने प्रेमके साथ कहा—'सब ठीक हो जायगा। चित्तको ठीक रखना चाहिये। तुम तो समझदार आदमी हो। मनको वशमें करो, सोच-समझकर बातका उत्तर दो। कलसे खूब सावधानी रखना। विद्यार्थियों-को खूब मनोयोगके साथ पढ़ाना। अच्छा !'

'जो आज्ञा' कहकर प्रभुने आचार्य गंगादासको प्रणाम किया और वे विद्यार्थियोंके साथ उनसे विदा हुए।

सर्वप्रथम संकीर्तन और अध्यापकीका अन्त

तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया।
तद्वर्णं तत्कुलं श्रेष्ठं तदाश्रमं शुभं भवेत्॥*

जिन नयनोंमें प्रियतमकी छवि समा गयी, जिस हृदय-मन्दिरमें श्रीकृष्णकी परमोज्ज्वल परम प्रकाशयुक्त मूर्ति स्थापित हो गयी, फिर भला उसमें दूसरेके लिये स्थान कहाँ ? जिनका मन-मधुप श्रीकृष्ण-कथारूपी मकरन्दका पान कर चुका है, जिनके चित्तको चित्तचोरने अपनी चञ्चल चितवनसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, वे फिर अन्य वस्तुकी ओर

---

* जिस कर्मके द्वारा हरि भगवान् सन्तुष्ट हो सकें वास्तवमें तो वही कर्म कहा जा सकता है और जिससे मुकुन्द-चरणोंमें रति उत्पन्न हो सके वही सच्ची विद्या है। जिस वर्ण, जिस कुलमें और जिस आश्रममें रहकर श्रीकृष्ण-कीर्तन करनेका सुन्दर सुयोग प्राप्त हो सके वही वर्ण, कुल तथा आश्रम शुभ और परम श्रेष्ठ गिना जा सकता है।

आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। उनकी जिह्वा सदा नारायणाख्यपीयूषका ही निरन्तर पान करती रहेगी, उनके द्वारा संसारी बातें कही ही नहीं जा सकेंगी। उन्हीं कर्मोंको वह कर्म समझेगा जिनके द्वारा श्रीकृष्णके कमनीय कीर्तनमें प्रगाढ़ रतिकी प्राप्ति हो सके। उसकी विद्या, बुद्धि, वैभव और सम्पदा तथा मेधा सभी एकमात्र श्रीकृष्ण-कथा ही है।

महाप्रभुका चित्त अब इस लोकमें नहीं रहा, वह तो कृष्णमय हो चुका। प्राण कृष्णरूप बन चुके, मनका उनके मनोहर गुणोंके साथ तादात्म्य हो चुका, चित्त उस माखनचोरकी चञ्चलतामें समा गया। वाणी उसके गुणोंकी गुलाम बन गयी, अब वे करें भी तो क्या करें? संसारी कार्य करनेके लिये मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियाँ आदि कोई भी उनका साथ नहीं देतीं, वे दूसरेके वशमें हो चुकीं। महाप्रभुकी सभी चेष्टाएँ श्रीकृष्णमय ही होने लगीं।

आचार्य गंगादासजीकी मधुर और वात्सल्यपूर्ण भर्त्सनाके कारण वह खूब सावधान होकर घरसे पढ़ानेके लिये चले। विद्यार्थियोंने अपने गुरुदेवको आते देखकर उनके चरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सभी सुखसे बैठ गये। विद्यार्थियोंका पाठ आरम्भ हुआ। किसी विद्यार्थीने पूछा—'अमुक धातुका किस अर्थमें प्रयोग होता है और अमुक लकारमें उसका कैसा रूप बनेगा?'

इस प्रश्नको सुनते ही आप भावावेशमें आकर कहने लगे—'सभी धातुओंका एक श्रीकृष्णके ही नाममें समावेश हो सकता है, शरीरमें जो सप्तधातु हैं और भी संसारमें जितनी धातु सुनी तथा कही जा सकती हैं सभीके आदिकारण श्रीकृष्ण ही हैं। उनके अतिरिक्त कोई अन्य धातु हो ही नहीं सकती। सभी स्थितियोंमें उनके समान ही रूप बनेंगे। भगवान्का रूप नील-श्याम है, उनके श्रीविग्रहकी कान्ति नवीन जलधरकी भाँति एकदम

स्वच्छ और हलके नीले रंगकी-सी है। उसे वैडूर्य या घनकी उपमा तो 'शाखाचन्द्रन्याय' से दी जाती है, असलमें तो वह अनुपमेय है, किसी भी संसारी वस्तुके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।'

प्रभुके ऐसे उत्तरको सुनकर विद्यार्थी कहने लगे—'आप तो फिर वैसी ही बातें कहने लगे। धातुका यथार्थ अर्थ बताइये। पुस्तकमें जो लिखा है उसीके अनुसार कथन कीजिये!'

प्रभुने अधीरताके साथ कहा—'धातुका यथार्थ अर्थ तो यही है, जो मैं कर रहा हूँ, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ कह ही नहीं सकता। मुझे तो इसका यही अर्थ मालूम पड़ता है। आगे आपलोग जैसा समझें।'

इसपर विद्यार्थियोंने कुछ प्रेमके साथ अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा—'आप तो हमें ऐसी विचित्र-विचित्र बातें बताते हैं, हम अब याद क्या करें! हमारा काम कैसे चलेगा, इस प्रकार हमारी विद्या कब समाप्त होगी और इस तरहसे हम किस प्रकार विद्या प्राप्त कर सकते हैं!'

आप प्रेमके आवेशमें आकर कहने लगे—'सदा याद करते रहनेकी तो एक ही वस्तु है। सदा, सर्वदा सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामोंके ही स्मरणमात्रसे प्राणीमात्रका कल्याण हो सकता है। सदा उसीका स्मरण करते रहना चाहिये। अहा, जिन्होंने पूतना-जैसी बालघ्नीको, जो अपने स्तनोंमें जहर लपेटकर बालकोंके प्राण हर लेती थी, उस क्रूर कर्म करनेवाली राक्षसीको भी सद्गति दी, उन श्रीकृष्णकी लीलाओंका चिन्तन करना ही मनुष्योंके लिये परम कल्याणका साधन हो सकता है। जो दुष्टबुद्धिसे भी श्रीकृष्णका स्मरण करते थे, जो उन्हें शत्रुरूपसे विद्वेषके कारण मारनेकी इच्छासे उनके पास आये थे, वे अघासुर, बकासुर, शकटासुर आदि पापी भी उनके जगत्-पावन दर्शनोंके कारण इस संसार-सागरसे बात-की-बातमें पार हो गये, जिससे योगीलोग करोड़ों वर्षतक समाधि लगाकर भाँति-

भाँतिके साधन करते रहनेपर भी नहीं तर सकते, उन श्रीकृष्णके चारु चरित्रोंके अतिरिक्त चिन्तनीय चीज और हो ही क्या सकती है ?

श्रीकृष्ण-कीर्तनसे ही उद्धार होगा, श्रीकृष्ण-कीर्तन ही सर्व सिद्धिप्रद है, उसके द्वारा प्राणीमात्रका कल्याण हो सकता है। श्रीकृष्ण-कीर्तन ही शाश्वत शान्तिका एकमात्र उपाय है, उसीके द्वारा मनुष्य सभी प्रकारके दुःखोंसे परित्राण पा सकता है। तुमलोगोंको उसी श्रीकृष्णकी शरणमें जाना चाहिये।

इनकी ऐसी व्याख्या सुनकर सभी विद्यार्थी श्रीकृष्णप्रेममें विभोर होकर रुदन करने लगे। वे सभी प्रकारके संसारी विषयोंको भूल गये और श्रीकृष्णको ही अपना आश्रय-स्थान समझकर उन्हींकी स्मृतिमें अश्रु-विमोचन करने लगे।

उनमेंसे कुछ उतावले और पुस्तकी विद्याको ही परम साध्य समझने-वाले छात्र कहने लगे—'हमें तो पुस्तकके अनुसार उसकी व्याख्या बताइये! उसे ही पढ़नेके लिये हम यहाँ आये हैं।'

प्रभु अब कुछ-कुछ स्वस्थ हुए थे। उन्हें अब थोड़ा-थोड़ा बाह्य ज्ञान होने लगा। इसलिये विद्यार्थियोंके ऐसा कहनेपर आपने रोते-रोते उत्तर दिया—'भैया! हम क्या करें, हमारी प्रकृति स्वस्थ नहीं है। मालूम पड़ता है, हमें फिरसे वही पुराना वायु-रोग हो गया है। हम क्या कह जाते हैं, इसका हमें स्वयं पता नहीं। अब हमसे इन ग्रन्थोंका अध्यापन न हो सकेगा। आपलोग जाकर किसी दूसरे अध्यापकसे पढ़ें! अब हम अपने वशमें नहीं हैं।'

प्रभुके ऐसा कहनेपर सभी विद्यार्थी फूट-फूटकर रोने लगे और विलाप करते हुए करुणकण्ठसे प्रार्थना करने लगे—'गुरुदेव! अब हम कहाँ जायँ! हम निराश्रयोंके आप ही एकमात्र आश्रय हैं। हमें आपके

समान वात्सल्यप्रेम दूसरे किस अध्यापकमें मिल सकेगा ? इतने प्रे साथ हमें अन्य अध्यापक पढ़ा ही नहीं सकता । आपके समान संशयोंका छेत्ता और सरलताके साथ सुन्दर शिक्षा देनेवाला अध्या ढूँढ़नेपर भी हमें त्रिलोकीमें नहीं मिल सकता । आप हमारा परित्याग कीजिये । हम आपके रोगकी यथाशक्ति चिकित्सा करावेंगे । स्वयं दिन-रा सेवा-शुश्रूषा करते रहेंगे ।'

उनकी आर्तवाणी सुनकर प्रभुकी आँखोंमेंसे अश्रुओंकी धारा बह लगी । रोते-रोते उन्होंने कहा—'भैया ! तुमलोग हमारे बाह्य प्राणों समान हो । तुमसे सम्बन्ध-विच्छेद करते हुए हमें स्वयं अपार दुःख हो रहा है, किन्तु हम करें क्या, हम तो विवश हैं । हमारी पढ़ानेकी शक्ति ही नहीं । नहीं तो तुम्हारे-जैसे परम बन्धुओंके सहवासका सुख स्वेच्छापूर्वक कौन सत्पुरुष छोड़ सकता है !'

विद्यार्थियोंने दीनभावसे कहा—'आज न सही, स्वस्थ होनेपर आप हमें पढ़ावें । हमारा परित्याग न कीजिये, यही हमारी श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है । आप ही हमारी इस जीवननौकाके एकमात्र आश्रय हैं, हमें मझधारमें ही बिलखता हुआ छोड़कर अन्तर्धान न हूजिये !'

प्रभुने गद्गद कण्ठसे कहा—'भैया ! मेरा यह रोग असाध्य है । अब इससे छुटकारा पानेकी आशा नहीं । किसी दूसरेके सामने तो बतानेकी बात नहीं है, किन्तु तुम तो अपनी आत्मा ही हो, तुमसे छिपाने योग्य तो कोई बात हो ही नहीं सकती । असल बात यह है कि अब हम पढ़ानेका या किसी अन्य कामके करनेका यत्न करते हैं तो एक श्यामवर्णका सुन्दर शिशु हमारी आँखोंके सामने आकर बड़े ही सुन्दर स्वरमें मुरली बजाने लगता है । उस मुरलीकी विश्वविमोहिनी तानको सुनकर हमारा चित्त व्याकुल हो जाता है और हमारी सब सुध-बुध भूल जाती है । हम पागलकी

भाँति मन्त्र-मुग्ध-से हो जाते हैं। फिर हम कोई दूसरा काम कर ही नहीं सकते।' इतना कहकर प्रभु फिर जोरोंके साथ फूट-फूटकर रोने लगे। उनके रुदनके साथ ही सैकड़ों विद्यार्थियोंकी आँखोंसे अश्रुओंकी धाराएँ बहने लगीं। सभी दाढ़ बाँधकर उच्चस्वरसे रुदन करने लगे। संजय महाशयका चण्डीमण्डप विद्यार्थियोंके रुदनके कारण गूँजने लगा। इस करुणापूर्ण क्रन्दन-ध्वनिको सुनकर सहस्रों नर-नारी दूर-दूरसे वहाँ आकर एकत्रित हो गये।

प्रभु अब कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। अश्रु-विमोचन करते हुए उन्होंने कहा—'मेरे प्राणोंसे भी प्यारे छात्रो! अपनी-अपनी पुस्तकोंको बाँध लो, आजसे अब हम तुम्हारे अध्यापक नहीं रहे और न अब तुम ही हमारे छात्र हो, अब तो तुम श्रीकृष्णके सखा हो। अब सभी मिलकर हमें ऐसा आशीर्वाद दो जिससे हमें श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त हो सके। तुम सभी हमें हृदयसे स्नेह करते हो, तुमसे हम यही दीनताके साथ भीख माँगते हैं। तुम सदा हमारे कल्याणके कामोंमें तत्पर रहे हो।'

प्रभुके मुखसे ऐसे दीनतापूर्ण शब्द सुनकर सभी विद्यार्थी बेहोश-से हो गये। कोई तो पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिरने लगे और कोई अपने सिरको पृथ्वीपर रगड़ने लगे।

प्रभुने फिर कहा—'मैं अन्तिम बार फिर तुमलोगोंसे कहता हूँ। तुमलोग पढना न छोड़ना, कहीं जाकर अपने पाठको जारी रखना।'

रोते हुए विद्यार्थियोंने कहा—'अब हमें न तो कहीं आप-जैसा अध्यापक मिलेगा और न कहीं अन्यत्र पढ़ने ही जायँगे। अब तो ऐसा ही आशीर्वाद दीजिये कि आपके श्रीमुखसे जो भी कुछ पढ़ा है, वही स्थायी बना रहे और हमें किसी दूसरेके समीप जानेकी जिज्ञासा ही उत्पन्न न हो। अब तो हमें अपने चरणोंकी शरण ही प्रदान कीजिये! आपके

चरणोंकी सदा स्मृति बनी रहे यही अन्तिम वरदान प्रदान कीजिये!' यह कहकर सभी विद्यार्थियोंने प्रभुको एक साथ ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रभुने भी सबको पृथक्-पृथक् गलेसे लगाया। वे सभी बड़भागी विद्यार्थी प्रभुके प्रेमपूर्ण आलिंगनसे कृतकृत्य हो गये और जोरोंसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर हरिनामकी तुमुल-ध्वनि करने लगे।

प्रभुने उन विद्यार्थियोंसे कहा—'भैया, हमलोग, इतने दिनोंतक साथ-साथ रहे हैं। हमारा तुमलोगोंसे बहुत ही अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, तुम ही हमारे परम आत्मीय तथा सुहृद् हो। एक बार तुम सभी एक स्वरसे श्रीकृष्णरूपी शीतल सलिलसे हमारे हृदयकी जलती हुई विरहज्वाला-को शान्त कर दो। तुम सभी श्रीकृष्ण-रसायन पिलाकर हमें नीरोग बना दो। एक बार तुम सभी लोग मिलकर श्रीकृष्णके मंगलमय नामोंका उच्चस्वरसे संकीर्तन करो!'

विद्यार्थियोंने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—'गुरुदेव! हम संकीर्तनको क्या जानें! हमें तो पता भी नहीं संकीर्तन कैसे किया जाता है? हाँ, यदि आप ही कृपा करके हमें संकीर्तनकी प्रणाली सिखा दें तो हम जिस प्रकार आज्ञा हो उसी प्रकार सब कुछ करनेके लिये उद्यत हैं।'

प्रभुने सरलताके साथ कहा—'कृष्ण-कीर्तनमें कुछ कठिनता थोड़े ही है, बड़ा ही सरल मार्ग है। तुमलोग बड़ी ही आसानीके साथ उसे कर सकते हो।' यह कहकर प्रभुने स्वयं स्वरके सहित नीचेका पद उच्चारण करके बता दिया—

हरे हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

प्रभुने स्वयं हाथसे ताली बजाकर इस नाम-संकीर्तनको आरम्भ किया। प्रभुकी बतायी हुई विधिके अनुसार सभी विद्यार्थी एक स्वरसे इस

नाम-संकीर्तनको करने लगे। हाथकी तालियोंके बजनेसे तथा संकीर्तनके सुमधुर स्वरसे सम्पूर्ण चण्डीमण्डप गूँजने लगा। लोगोंको महान् आश्चर्य हुआ। नवद्वीपमें यह एक नवीन ही वस्तु थी। इससे पूर्व ढोल, मृदंग, करताल आदि वाद्योंपर पद-संकीर्तन तो हुआ करता था, किन्तु सामूहिक नाम-संकीर्तन तो यह सर्वप्रथम ही था। इसकी नींव निमाई पण्डितकी पाठशालाहीमें पहले-पहल पड़ी। सबसे पहले इन्हीं नामोंके पदसे नाम-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ।

प्रभु भावावेशमें जोरसे संकीर्तन कर रहे थे, विद्यार्थी एक स्वरसे उनका साथ दे रहे थे। कीर्तनकी सुमधुर ध्वनिसे दिशा-विदिशाएँ गूँजने लगीं। चण्डीमण्डपमें मानो आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। दूर-दूरसे मनुष्य उस आनन्द-सागरमें गोता लगाकर अपनेको कृतार्थ बनानेके लिये दौड़े आ रहे थे। सभी आनन्दकी बाढ़में अपने-आपेको भूलकर बहने लगे और सभी दर्शनार्थियोंके मुँहसे स्वयं ही निकलने लगा।

हरे हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

इस प्रकार चारों ओरसे इन्हीं भगवन्नामोंकी ध्वनि होने लगी। पक्के-पक्के मकानोंमेंसे जोरकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ने लगी—

हरे हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

मानो स्थावर-जंगम, चर-अचर सभी मिलकर इस कलिपावन नाम-का प्रेमके साथ संकीर्तन कर रहे हों। इस प्रकार थोड़ी देरके अनन्तर प्रभुका भावावेश कुछ कम हुआ। धीरे-धीरे उन्होंने ताली बजानी बंद कर दी और संकीर्तन समाप्त कर दिया। प्रभुके चुप हो जानेपर सभी विद्यार्थी तथा दर्शनार्थी चुप हो गये, उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु अब भी निकल रहे थे।

प्रभुने उठकर एक बार फिर सब विद्यार्थियोंको गलेसे लगाया। सभी विद्यार्थी फूट-फूटकर रो रहे थे। कोई कह रहा था—'हमारे प्राणोंके सर्वस्व हमें इसी प्रकार मझधारमें न छोड़ दीजियेगा!' कोई हिचकियाँ लेते हुए गद्‌गदकण्ठसे कहता—'पढ़ना-लिखना तो जो होना था, सो हो लिया, आपके हृदयके किसी कोनेमें हमारी स्मृति बनी रहे, यही हमारी प्रार्थना है।' प्रभु उन्हें बार-बार आश्वासन देते। उनके शरीरोंपर हाथ फेरते, किन्तु उन्हें धैर्य होता ही नहीं था, प्रभुके स्पर्शसे उनकी अधीरता अधिकाधिक बढ़ती जाती थी, वे बार-बार प्रभुके चरणोंमें लोटकर प्रार्थना कर रहे थे। दर्शनार्थी इस करुण दृश्यको और अधिक देरतक देखनेमें समर्थ न हो सके, वे कपड़ोंसे अपने-अपने मुखोंको ढककर फूट-फूटकर रोने लगे। प्रभु भी इस करुणाकी उमड़ती हुई तरङ्गमें बहुत प्रयत्न करनेपर भी अपनेको न सम्हाल सके। वे भी रोते-रोते वहाँसे गङ्गाजीकी ओर चल दिये। विद्यार्थी उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। प्रभुने सभीको समझा-बुझाकर विदा किया। प्रभुके बहुत समझानेपर विद्यार्थी दुःखितभावसे अपने-अपने स्थानोंको चले गये और प्रभु गङ्गाजीसे निवृत्त होकर अपने घरको चले आये।*

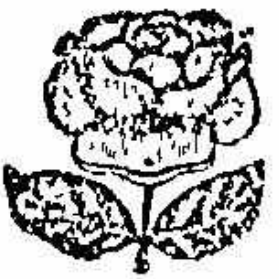

* आगेकी पुण्य लीलाओंके लिये दूसरा खण्ड देखनेकी प्रार्थना है।

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली

(द्वितीय खण्ड)

उच्चैरास्फालयन्तं करचरणमहो हेमदण्डप्रकाण्डौ
बाहू प्रोद्धूत्य सत्ताण्डवतरलतनूं पुण्डरीकायताक्षम् ।
विश्वस्यानन्दलग्नं किमपि हरिहरीत्युन्मदानन्दनादै-
र्वन्दे तं देवचूडामणिमतुलरसाविष्टचैतन्यचन्द्रम् ॥

विषय-सूची

विषय			पृष्ठाङ्क
समर्पण			
प्राक्कथन	...	...	१
१—मङ्गलाचरण	...	...	१३
२—कृपाकी प्रथम किरण	...	...	१
३—भक्त-भाव	...	...	११
४—अद्वैताचार्य और उनका सन्देह	...	...	२१
५—श्रीवासके घर संकीर्तनारम्भ	...	...	२६
६—धीर-भाव	...	...	४२
७—श्रीनृसिंहावेश	...	...	५२
८—श्रीवाराहावेश	...	...	५८
९—निमाईके भाई निताई	...	...	६३
१०—स्नेहाकर्षण	...	...	७४
११—व्यासपूजा	...	...	८५
१२—अद्वैताचार्यके ऊपर कृपा	...	...	९७
१३—अद्वैताचार्यको श्यामसुन्दररूपके दर्शन		...	१०६
१४—प्रच्छन्न भक्त पुण्डरीक विद्यानिधि	...	...	११९
१५—निमाई और निताईकी प्रेम-लीला	...	...	१३२
१६—द्विविध-भाव	...	...	१४०
१७—भक्त हरिदास	...	...	१४६
१८—हरिदासकी नाम-निष्ठा	...	...	१५४
१९—हरिदासजीद्वारा नाम-माहात्म्य	...	...	१६७
२०—सप्तप्रहरिया-भाव	...	...	१७६
२१—भक्तोंको भगवान्‌के दर्शन	...	...	१८६
२२—भगवद्भावकी समाप्ति	...	...	२०१
२३—प्रेमोन्मत्त अवधूतका पादोदक-पान	...	...	२०६

विषय			पृष्ठाङ्क
२४—घर-घरमें हरिनामका प्रचार	...	...	२१७
२५—जगाई-मधाईकी क्रूरता, नित्यानन्दकी उनके उद्धारके निमित्त प्रार्थना	...	...	२२५
२६—जगाई-मधाईका उद्धार	...	...	२३१
२७—जगाई और मधाईकी प्रपन्नता	...	...	२५३
२८—जगाई-मधाईका पश्चात्ताप	...	...	२६३
२९—सज्जन-भाव	...	...	२७०
३०—श्रीकृष्ण-लीलाभिनय	...	...	२७८
३१—भक्तोंके साथ प्रेम-रसास्वादन	...	...	२९८
३२—भगवत्-भजनमें बाधक भाव	...	...	३१४
३३—नदियामें प्रेम-प्रवाह और काजीका अत्याचार		...	३२७
३४—काजीकी शरणापत्ति	...	...	३३७
३५—भक्तोंकी लीलाएँ	...	...	३५८
३६—नवानुराग और गोपी-भाव	...	...	३७४
३७—संन्याससे पूर्व	...	...	३८४
३८—भक्त-वृन्द और गौरहरि	...	...	३९५
३९—शचीमाता और गौरहरि	...	...	४०६
४०—विष्णुप्रिया और गौरहरि	...	...	४१४
४१—परम सहृदय निमाईकी निर्दयता	...	...	४२२
४२—हाहाकार	...	...	४३३

चित्र-सूची

१—गौरप्रभु (दोरङ्गा) टाइटल
२—श्रीनिमाई-निताई(तिरङ्गा) १
३—निताई (दोरङ्गा) ६३
४—अद्वैताचार्य („) ९७
५—हरिदासका नाम- (इकरङ्गा) १९०
६—श्रीनिताई और हरिदास-का नाम-प्रचार(इकरंगा)२१७
७—जगाई-मधाई-उद्धार (तिरङ्गा) २३९
८—श्रीचैतन्य महाप्रभुका संकीर्तन-दल („) २३७
९—काजी-उद्धार („) ३५२

कीर्तनीयः सदा हरिः।

सचित्र

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली

लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

श्रीचैतन्यदेवकी इतनी बड़ी सविस्तर जीवनी अभीतक हिन्दीमें कहीं नहीं छपी। भगवान् और उनके भक्तोंके गुणगानसे भरी हुई इस जीवनीको पढ़कर सभी सज्जन लाभ उठावें। इसकी भाषा सुन्दर है। छपाई उत्तम है। वर्णन सरस है। श्रीचैतन्यदेवकी लीलाओंके विषयमें तो कहना ही क्या? जिन्होंने एक बार भी थोड़ी सुनी है, उनका चित्त ही जानता है।

सम्पूर्ण पुस्तक पाँच खण्डोंमें समाप्त होगी। पहला-दूसरा खण्ड छप गये हैं। (दूसरा आपके हाथमें है) तीसरा, चौथा और पाँचवाँ छपनेके लिये प्रेसमें आ गये हैं, शीघ्र ही तैयार होंगे। इस खण्डकी तरह सब सुन्दर साफ सज्जासे छपेंगे।

इन्हें पढ़कर लाभ उठानेकी पुनः प्रार्थना है।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

गीताप्रेसकी गीताएँ

१–श्रीमद्भगवद्गीता–[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य है और भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है । श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है । पृष्ठ ५०४, ३ चित्र, साधारण जिल्द २॥) बढ़िया जिल्द ... २॥)

२–श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति-सहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ४००, बहुरंगे ४ चित्र १।)

३–श्रीमद्भगवद्गीता–गुजराती-टीका, गीता नम्बर दोकी तरह ... १।)

४–श्रीमद्भगवद्गीता–मराठी-टीका, हिन्दीकी १।) वालीके समान मूल्य १।)

५–श्रीमद्भगवद्गीता–प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≡) सजिल्द ॥=)

६–श्रीमद्भगवद्गीता–बंगला-टीका, गीता नं० ५ की तरह मू० १) स० १।)

७–श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्-प्राप्तिनामक निबन्धसहित, साइज मझोला, मोटा टाइप, २१६ पृष्ठ सचित्र पुस्तकका मूल्य ॥) स० ॥≡)

८–गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।–) सजिल्द ... ।≡)

९–गीता–साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सभी विषय ॥) वालीके समान, सचित्र, पृष्ठ ३४२, मूल्य ≠)॥ सजिल्द ... ≠)॥

१०–गीता–भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं। अक्षर मोटे हैं, १ चित्र मू।) स० ।≠)

११–गीता–मूल तायीजी, साइज २ × २॥ इञ्च, सजिल्द ... ≠)

१२–गीता–मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ≠)

१३–गीता–७॥ × १० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण ... –)

१४–गीता-सूची (Gita List)अनुमान २००० गीतार्थोंका परिचय ॥)

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर

समर्पण

यत्कृतं यत्करिष्यामि यत्करोमि जनार्दन।
तत् त्वयैव कृतं सर्वं त्वमेव फलभुग् भवेः॥*

प्यारे! लो, यह तुम्हारे कराये हुए कार्यका दूसरा अंश है। अपनी चीजको आप ही स्वीकार करो और जिस प्रकार स्वामी सेवकके द्वारा अपनी ही वस्तु पाकर उसकी ओर कृपाकी दृष्टिसे देखता है, उसी प्रकार इस दीन-हीन, कंगाल, साधनरहित सेवककी ओर भी कृपा-कटाक्षकी कोरसे एक बार निहार भर लो। यही इस कृतघ्न सेवककी अभिलाषा है।

प्रभो! तुम्हारे कराये हुए कार्योंमें अपनेपनके भाव न उठने पावें। मैं भी महात्मा पलटूदासजीकी भाँति निष्कपटभावसे बनावटीपनको दूर करके हृदयसे कह उठूँ—

ना मैं किया, न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आप है, 'पलटू' 'पलटू' शोर॥

श्रीहरिबाबाका बाँध
गँवा (बदायूँ)
फाल्गुनशुक्ला ६,
१९८८ वि०

कृपाकटाक्षका आकांक्षी—
तुम्हारा पुराना सेवक
प्रभु

---

* हे जनार्दन! मेरेद्वारा जो कुछ हुआ है, हो रहा है और जो आगे होगा वह सब तुमने ही कराया है, इसलिये तुम्हीं इन सबके फलभोक्ता हो।